लेखक के दो शब्द

काग़ज़का प्रबन्ध होसका है, इसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं। —लेखक

विषय-सूची

ॐ

श्रीवीतरागाय नमः

धर्म शिक्षावली

चौथा भाग

पाठ १

स्तुति

(पं० दौलतरामजी कृत)

दोहा

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द रस लीन।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरि रज रहस विहीन ॥ १ ॥

पद्धरि छन्द

जय वीतराग विज्ञान पूर,
जय मोह तिमिर को हरन सूर।
जय ज्ञान अनंतानंत धार,
दृग सुख-वीरज-मंडित अपार ॥ २ ॥

जय परम शांति मुद्रा समेत,
भवि जन को निज अनुभूति हेत।
भवि-भागन-वश जोगे वशाय,
तुम धुनि व्है सुनि विभ्रमनशाय ॥ ३ ॥
तुम गुण चिंतत निज पर विवेक,
प्रगटै, विघटैं आपद अनेक।
तुम जग भूषण दूषण वियुक्त,
सब महिमायुक्त विकल्प मुक्त ॥ ४ ॥
अविरुद्ध शुद्ध चेतन स्वरूप,
परमात्म परम पावन अनूप।
शुभ अशुभविभाव अभाव कीन,
स्वाभाविक परणतिमय अछीन ॥ ५ ॥
अष्टादश दोष विमुक्त धीर,
स्व चतुष्टय मय राजत गंभीर।
मुनि गणधरादि सेवत महंत,
नव केवल लब्धि रमा धरंत ॥ ६ ॥
तुम शासन सेय अमेय जीव,
शिव गये जाहिं जैहैं सदीव।
भवसागर में दुख छार-वारि,
तारन को और न आप टारि ॥ ७ ॥

यहलखि निजदुखगदहरनकाज,

तुमही निमित्त कारण इलाज।

जाने तातें मैं शरण आय,

उचरोंनिजदुख जोचिरलहाय ॥ ८ ॥

मैं भ्रम्यो अपनपोविसरि आप,

अपनाये विधिफल पुण्य पाप।

निज को पर को करता पिछान,

पर में अनिष्टता इष्ट ठान ॥ ९ ॥

आकुलित भयो अज्ञान धारि,

ज्यों मृग मृग-तृष्णा जान वारि।

तन परणति में आपो चितार,

कबहूं न अनुभवो स्वपदसार ॥ १० ॥

तुम को बिन जाने जो कलेश,

पाये सो तुम जानत जिनेश।

पशु नारक नर सुरगति मझार,

भवधर धर मरयो अनंत बार ॥ ११ ॥

अब काललब्धि बलतें दयाल,

तुम दर्शन पाय भयो खुशाल।

मन शांत भयो मिट सकलद्वंद,

चाख्योस्वातमरसदुखनिकंद ॥ १२ ॥

तातें अब ऐसी करहु नाथ,
बिछुरै न कभी तुव चरण साथ ।
तुम गुणगण को नहिं छेव देव,
जगतारण को तुव विरद एव ॥१३॥
आतम के अहित विषय कषाय,
इनमें मेरी परणति न जाय ।
मैं रहों आप में आप लीन,
सो करो होहुं ज्यों निजाधीन ॥१४॥
मेरे न चाह कछु और ईश,
रत्नत्रय निधि दीजे मुनीश ।
मुझ कारज के कारण सु आप,
शिव करहु हरहु मम मोह ताप ॥१५॥
शशि शांति करन तप हरन हेत,
स्वयमेव तथा तुम कुशलदेत ।
पीवत पियूष ज्यों रोग जाय,
त्यों तुम अनुभव तैं भव नशाय ॥१६॥
त्रिभुवन तिहुं काल मझार कोय,
नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय ।
मो उर यह निश्चय भयो आज,
दुखजलधिउतारन तुम जहाज ॥१७॥

दोहा-तुम गुण-गणमणि गणपति, गणत न पावहिं पार।
"दौल" स्वल्प मति किमि कहै, नमों त्रियोग संभार ॥१८॥

प्रश्नावली

१-यह स्तुति किसकी बनाई हुई है?
२-स्तुति से तुम क्या समझते हो? इस स्तुति को कब और क्यों पढ़ते हैं?
३-नीचे लिखे छन्द मुखाग्र सुनाओ:--
(क) "भ्रम्यो अपन पो" से लेकर "मरयो अनंतबार"
(ख) आतम के अहित..........अंक तक?
(ग) आदि के चार छन्द पढ़ कर सुनाओ?

पाठ २

धीर वीर चन्द्रगुप्त

बौद्धों के ग्रंथ महावंश में प्रगट है, कि मगध देश में बसने वाले शाक्य घराने के कुछ राजा अन्य राजाओं के आक्रमण से पीड़ित होकर हिमालय पर्वत पर जा बसे। वहां एक नगर मयूर की गर्दन के समान रचकर उसका नाम "मयूर नगर" रखा। वहाँ के रहने वाले मौर्य कहलाने लगे।

इन्हीं मौर्य के राजकुमारों में एक चन्द्रगुप्त नाम का राजकुमार भी था। उसकी माता मौर्याख्य देश

के क्षत्रियों की राजकुमारी थी। राजा दुष्ट था, इसलिये चन्द्रगुप्त की माता पटना चली गई। यहां उसने वीर पुत्र को जन्म दिया और उसका पालन पोषण किया। राजकुमार चन्द्रगुप्त बड़े पराक्रमी और बुद्धिमान थे। वह शास्त्र और शस्त्र विद्या में शीघ्र ही निपुण हो गये। चाणक्य नाम के एक ब्राह्मण ने चन्द्रगुप्त को पढ़ा कर प्रवीण किया।

उस समय मगध में महा पद्मनद का राज्य था। जिससे चाणक्य को सन्तोष न था। वह राजा को हटा कर चन्द्रगुप्त को राजगद्दी पर बिठाना चाहता था। उन दिनों भारत पर यूनान के सम्राट् सिकन्दर महान् का आक्रमण हो रहा था और उसने उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत एवं पंजाब पर अपना अधिकार जमा लिया था। चन्द्रगुप्त ने यूनानियों की वीरता की प्रशंसा सुनी थी। चाणक्य की सम्मति से वह सिकन्दर महान् की सेना में बेधड़क चला आया और उन विदेशियों की सेना में भरती हो गया।

चन्द्रगुप्त को यूनानी सेना में रहते अभी बहुत समय नहीं बीता था, कि उसका क्षत्रिय तेज भड़क उठा। भारतीय क्षत्रियों का लहू उस की नसों में खौल रहा था। वह स्वाभिमान खोकर अपना जीवन

मलिन नहीं करना चाहता था। एक दिन बातों ही बातों में सिकन्दर से उसकी बिगड़ गई। सिकन्दर का साथ छोड़ कर वह कहीं चल दिया। अब चन्द्रगुप्त के भाग्य का सितारा चमका। चाणक्य के सहयोग से उसने नन्द-राजा को हरा दिया। चन्द्रगुप्त मगध का अधिपति हो गया, और उसने अपना राज्य सारे भारत में फैला लिया। राजानन्द की पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त से हुआ।

चन्द्रगुप्त ने यूनानी राजा सैल्युकस को भी बड़ी वीरता से हराया। सैल्युकस ने अपनी पुत्री चन्द्रगुप्त को विवाह दी व काबुल, कन्धार व ईरान के प्रदेश भी भेंट किये। चन्द्रगुप्त ने भारत के बाहर के राजाओं को भी अपने प्रभाव से वश में कर लिया। प्रजा उसके राज्य में रामराज्य के सुख भोगने लगी। धर्म और सत्य की बढ़वारी हुई।

चन्द्रगुप्त जैनधर्म का दृढ़ श्रद्धानी था। सदैव ग्रहस्थ का धर्म पालता था। उसने पशुओं की रक्षा के लिये भी हस्पताल खुलवाये थे। वह बड़ा दानी तथा जीव दया प्रचारक था। एक बार चन्द्रगुप्त ने जैनगुरु श्री भद्रबाहु स्वामी का उपदेश सुना। उसे वैराग्य हो गया तथा अपने पुत्र बिंदुसार को राज्य देकर वह साधु हो गया।

दक्षिण भारत के श्रवणबेलगोल नामक पवित्र स्थान पर इसने गुरु का समाधि मरण कराया, उनकी खूब सेवा की। गुरु तो स्वर्ग पधारे। पीछे चन्द्रगुप्त ने भी जन्म भर तप किया और स्वर्ग पाया।

चन्द्रगुप्त ने २२ वर्ष तक राज्य किया। इसका समय सन् ईस्वी ३२२ पूर्व से २९८ पूर्व तक रहा। चन्द्रगुप्त संसार में एक आदर्श सम्राट् हुआ। उसकी शासन पद्धति अत्यन्त उत्तम थी। उसके पास एक बड़ी भारी सेना थी। देश में हर एक को सुख था। जनता की आर्थिक दशा बड़ी अच्छी थी। बाहर विदेशों से भी यात्री आते थे। इसके दरबार में मेगस्थनीज नाम का यूनानी राजदूत रहता था। उसने चन्द्रगुप्त के राज्य का हाल लिखा है। बालको! तुम भी चन्द्रगुप्त के समान धीरता और वीरता से काम लो। यदि तुम ऐसा करोगे तो सफलता का मुकुट तुम्हारे शीस पर सोहेगा।

प्रश्नावली

१ चन्द्रगुप्त किस वंश में उत्पन्न हुए थे और बताओ इनके वंश का वह नाम किस प्रकार पड़ गया था?

२ चन्द्रगुप्त के गुरु कौन थे और वे क्या चाहते थे?

३ चन्द्रगुप्त कौन २ सी विद्याओं में निपुण थे? और इन्होंने

मगध का राज्य किस प्रकार प्राप्त करके अपना विवाह किस के साथ किया था ?

४ चन्द्रगुप्त ने अपना राज्य किस प्रकार चलाया और क्यों कर अपनी प्रजा का पालन किया ?

५ चन्द्रगुप्त ने अपना अन्तिम काल किस प्रकार सफल किया ?

६ मेगस्थनीज कौन था, उसके बारे में तुम क्या जानते हो।

पाठ ३

अष्टमूल गुण

मूल जड़ को कहते हैं। जैसे जड़ के बिना पेड़ नहीं ठहर सकता, उसी प्रकार कुछ नियम ऐसे होते हैं कि जिनका पालन किये बिना मनुष्य धर्म मार्ग पर नहीं चल सकता। इस लिये धर्म पालने के सबसे पहले मुख्य नियमों को मूल गुण कहते हैं।

जिन मुख्य नियमों को पहले पालन किये बिना मनुष्य श्रावक नहीं कहला सकता, वे ही नियम श्रावक के मूल गुण कहलाते हैं। वे मूल गुण ८ हैं।

(१) मद्यत्याग (२) मांस त्याग (३) मधुत्याग (४) अहिंसा (५) सत्य (६) अचौर्य (७) ब्रह्मचर्य (८) परिग्रह-परिमाण।

(१) **मद्यत्याग**—शराब वगैरह नशीली चीजों के सेवन का त्याग मद्यत्याग है। शराब अनेक पदार्थों के सड़ाने से पैदा होती है। सड़ाने से अनेक कीड़े पैदा होते और मरते रहते हैं। जीव हिंसा के बिना शराब किसी प्रकार तैयार नहीं हो सकती। इस लिये शराब पीने से जीवहिंसा का पाप लगता है। शराब पीने से मनुष्य पागल सा हो जाता है उसे भले बुरे का ज्ञान नहीं रहता। शराबी के मुख में कुत्ते पेशाब कर जाते हैं। इसी प्रकार शराबी की और भी दुर्गति होती हैं। इस लिये शराब नहीं पीना चाहिये। तथा भंग, गांजा, अफीम कोकीन, चरस, तम्बाकू, बीड़ी, चुरट आदि और भी नशीली चीज़ों का सेवन कदापि नहीं करना चाहिये।

(२) **मांसत्याग**—मांस खाने का त्याग करना मांस त्याग कहलाता है। मांस त्रस जीवों के घात से उत्पन्न होता है। उसमें अनेक जीव पैदा होते और मरते रहते हैं, मांस के छूने मात्र से ही जीव मर जाते हैं। इसलिये जो मांस खाता है वह बड़ी हिंसा करता है। मांस खाने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं। मांस खाने वालों के परिणाम क्रूर हो

जाते हैं। मांस खाने से शरीर पुष्ट भी नहीं होता। इस लिए धर्मात्मा पुरुषों को मांस छोड़ना ही उचित है।

(३) **मधुत्याग**—शहद खाने का त्याग मधुत्याग है। शहद मक्खियों का उगाल (वमन) होता है। मधु में हर समय सूक्ष्म-त्रस जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। मधु मक्खियों के छत्ते को निचोड़ कर निकाला जाता है। छत्ते में छोटी छोटी मक्खियां रहती हैं। छत्ते को निचोड़ते समय वे सब मर जाती हैं, और शहद में उन सब का निचोड़ आ जाता है इस लिये ऐसी अपवित्र हिंसा की खान, घृणा करने वाली चीज़ का त्याग करना ही उचित है।

(४) **अहिंसा अणुव्रत**—जान बूझकर इरादा करके जन्तुओं की हत्या करने से बचना अहिंसा अणुव्रत है। किसी भी मानव को धर्म के नाम से पशुओं की बलि न करनी चाहिये। न शिकार के लिए मारना चाहिये। न ऐसा शौक़ चमड़े, रेशम व हिंसाकारी वस्तुओं के व्यवहार का करना चाहिये जिससे जन्तुओं का अधिक घात हो। खेती, व्यापार, शिल्प, राज्य प्रबन्ध संबन्धी हिंसा ग्रहस्थी से छूट नहीं सकती। इसे आरम्भी हिंसा

कहते हैं। जीव दया के लिए पानी छान कर पीना चाहिये। दोहरे मोटे साफ कपड़े से छानकर पीना चाहिये। बिना छाना पानी पीने से बहुत से त्रस जीवों की हिंसा होती है। जीवदया के लिए रात्रि को भोजन न करने का भी जहां तक हो सके अभ्यास करना चाहिये। रात्रि भोजन से बहुत से जन्तुओं की हिंसा होती है, जो रात्रि को अधिक उड़ते हैं। सूर्य के प्रकाश में भोजन करने से भोजन पाचक भी होता है।

(५) **सत्य अणुव्रत**—पीड़ाकारी वचन कभी नहीं कहने चाहियें। झूठ बोलने से दूसरों को कष्ट पहुँचता है। झूठ बोलकर अपना मतलब निकालना, धनादि कमाना पाप है। असत्य हिंसा का ही अंग है।

(६) **अचौर्य अणुव्रत**—बिना दी हुई वस्तु रागवश उठा लेना चोरी है। मनुष्य को सत्य व्यवहार करना चाहिये। चोरी करने से दूसरे के प्राणों को कष्ट पहुँचता है। यह भी हिंसा का भेद है।

(७) **ब्रह्मचर्य अणुव्रत**—ब्रह्मचर्य बड़ा गुण है। जब तक विवाह न हो पूर्ण ब्रह्मचर्य पालना उचित है। विवाह हो जाने पर अपनी पत्नी में संतोष रखना उचित है, पर स्त्री का त्याग होना चाहिये।

(८) **परिग्रह परिमाण**—ग्रहस्थ को जितनी इच्छा व जरूरत हो उतनी सम्पत्ति का परिमाण कर लेना चाहिये, जब उतना धन हो जावे तब संतोष से अपना जीवन धर्मध्यान व परोपकार में बिताना चाहिये।

नोट—किन्हीं आचार्यों ने मद्य, मांस, मधु और पांच उदम्बर के त्याग को ही अष्टमूलगुण कहा है।

पांच उदम्बर यह हैं:—(१) बड़फल (२) पीपलफल (३) पाकर (पिलखन) (४) गूलर (५) कठूमर (अंजीर) इनमें त्रसजीव पाये जाते हैं! इनमें से कभी किसी फल में साफ नहीं दिखलाई पड़ते हैं, तो भी उनके पैदा होने की सामग्री है। इस कारण जीवदया के लिये उनका त्याग ही उचित है।

मद्य, मांस, मधु इन तीनों को मकार कहते हैं क्योंकि इन तीनों का पहला अक्षर "म" है।

प्रश्नावली

१ मूलगुण किसे कहते हैं? और इनका पालन कौन करता है? यह भी बताओ कि इन गुणों का नाम "मूलगुण" क्यों पड़ा?
२ मूल गुण कितने होते हैं? नाम बताओ।
३ मद्य, मांस व मधु सेवन में क्या बुराई है? अहिंसाणुव्रत का धारी इन वस्तुओं का सेवन करेगा या नहीं?

४ अहिंसाणुव्रत से क्या अभिप्राय है ? खेती व्यापार आदि करने में हिंसा होती है या नहीं ? तुम्हारी समझ में खेती व्यापार करने वाला गृहस्थी अहिंसाणुव्रत धारण कर सकता है या नहीं ?

५ क्या मूल गुणों को अन्य रूप से बतलाया गया है । यदि बतलाया है तो इसका क्या कारण है ?

६ मद्य, मांस और मधु को मकार क्यों कहते हैं ?

पाठ ४

अभक्ष्य

१--जिन पदार्थों के खाने से त्रस जीवों का घात होता हो जैसे बड़, पीपल आदि पांच उदम्बर फल। बिस (कमल डन्डी) बीधा अन्न, गले सड़े फल जिनमें त्रस जीव पैदा हो जावें तथा मांस मधु, द्विदल और चलित रस ।

नोट—**द्विदल** कच्चे दूध, कच्चे दही और कच्चे दूध की जमी हुई उड़द, मूंग, चना आदि द्विदल वस्तु (जिसके दो टुकड़े बराबर २ हो जाते हैं) को मिला कर खाना।

चलितरस—वह पदार्थ जिनका स्वाद बिगड़ गया हो, जो मर्यादा से रहित हो गये हों जैसे बदबूदार घी, सुरसली वाला आटा तथा बहुत दिनों की बनी हुई मिठाई मुरब्बा, अचार आदि ।

[२] जिन पदार्थों के खाने से अनन्त स्थावर जीवों का घात होता हो जैसे-आलू, अरबी, मूली, गाजर, लहसन, अदरक, प्याज, शकरकन्दी, कचालू, तुच्छफल (जिसमें बीज न पड़े हों व जो बहुत छोटे हों और बड़े हो सकते हों)

[३] जो पदार्थ प्रमाद तथा काम विकार के बढ़ाने वाले हों जैसे—शराब, कोकीन, भङ्ग, चरस, तम्बाकू आदि नशीली चीजें, माजून आदि।

(४) **अनिष्ट**—पदार्थ अर्थात् ऐसे पदार्थ जो खाने योग्य तो हों, परन्तु शरीर को हानि पहुँचावें, जैसे खांसी दमा रोग वाले को मिठाई खाना, बुखार वाले को घी खाना, अधपका कच्चा देर से पचने वाला, अपनी प्रकृति विरुद्ध भोजन।

(५) **अनुपसेव्य**—वे पदार्थ जिनको अपने देश समाज तथा धर्म वाले लोग बुरा समझें।

इनके सिवाय मक्खन, चमड़े के कुप्पे, तराजू आदि में रखे हुए तथा छूवे हुए घी, हींग, सिरका आदि पदार्थ अजानफल, बिना देखे बिना शोधे अन्य खाने के पदार्थ भी अभक्ष्य हैं।

१६ यह न जानो कि सदैव बलवान नौजवान बने रहेंगे।

प्रश्नावली

१ अभक्ष्य से तुम क्या समझते हो ? और यह कितने प्रकार का होता है ? बताओ ?

२ द्विदल किसे कहते हैं ? दही में डाले हुए उड़द के बड़े द्विदल हैं या नहीं ?

३ चलित रस किसे कहते हैं ? बहुत दिनों की बनी हुई मिठाई, पुराना अचार और एक माह का पिसा हुआ आटा चलित रस है या नहीं और क्यों ?

४ बताओ अभक्ष्य खाने में क्या हानि है ?

५ अनिष्ट और अनुपसेव्य किसे कहते हैं ? और कौन से पदार्थ अनिष्ट और अनुपसेव्य की श्रेणी में गिने जा सकते हैं ?

पाठ ५

महावीर की वाणी

अखिल-जग-तारन को जल-यान। प्रकटी, वीर, तुम्हारी वाणी
जगमें सुधा समान॥

अनेकान्तमय, स्यात्पद-लांछित, नीति न्याय की खान।
सब कुवाद का मूल नाशकर, फैलाती सद्ज्ञान॥
नित्य-अनित्य-अनेक—इक-इत्यादिकवाद महान्।
नतमस्तक हो जाते सन्मुख, छोड़ सकल अभिमान॥

जीव–अजीवतत्त्व निर्णयकर, करती संशय–हान।
साम्य भावरस चखते हैं जो, करते इसका पान॥
ऊँच,नीच औ लघु-सुदीर्घ का, भेद न कर भगवान।
सबके हित की चिन्ता करती, सब पर दृष्टि समान॥
अन्धी श्रद्धा का विरोध कर, हरती सब अज्ञान।
युक्ति-वाद का पाठ पढ़ा कर, कर देती सज्ञान॥
ईश न जगकर्ता, फलदाता, स्वयं सृष्टि-निर्माण।
निज उत्थान-पतन निजकरमें, करती यों सुविधान॥
हृदय बनाती उच्च,सिखाकर, धर्मसुदया–प्रधान।
जो नित समझ आदरें इसको, वे'युगवीर' महान॥

प्रश्नावली

१—महावीर वाणी के रचयिता कौन हैं ?

२—महावीर वाणी का नित्य पाठ करने से हमारे भावों में क्या विचार उत्पन्न होते हैं और इससे क्या शिक्षा मिलती है ?

३—इस जगत का कर्त्ता, हर्त्ता कौन है ?

४—क्या हमारे कर्मों का फलदाता कोई है ?

१८ अखबार सदैव पढ़ो जिससे संसार की हालत जानो।

पाठ ६

कर्म

प्यारे बालकों ! तुम नित प्रति संसार में देखते हो, कोई सवेरे से शाम तक कठिन परिश्रम करता है, फिर भी उसे सफलता प्राप्त नहीं होती। कोई थोड़े ही परिश्रम से अपने कार्य में सफलता प्राप्त कर लेता है। कोई २ थोड़े परिश्रम करने से ही अधिक विद्या सम्पादन कर लेते हैं, और कोई २ घोर परिश्रम करने पर भी मूर्ख बने रहते हैं। कितने ही लोग धन उपार्जन के लिये दिन रात नहीं गिनते, फिर भी दरिद्रता उनका पीछा नहीं छोड़ती। स्वामी और सेवक में से सेवक ही अधिक परिश्रम करता है और वही निर्धन होता है। ऐसी ऐसी बातों पर विचार करने से विदित होता है कि जहाँ छोटे से छोटे और बड़े से बड़े कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये परिश्रम की आवश्यकता है, वहाँ साथ ही किसी और शक्ति विशेष की भी आवश्यकता है। वह शक्ति कर्म है, जिसे लोग भाग्य कहा करते हैं। जब कर्म परिश्रम के अनुकूल होता है, तभी कार्य में सफलता प्राप्त होती है। देखो दो छात्र साथ पढ़ते हैं, समान परिश्रम करते हैं, उन में से एक

परीक्षा के समय बीमार हो जाता है, परीक्षा दे नहीं पाता। दूसरा परीक्षा देकर पास हो जाता है, यह सब कर्म का माहात्म्य है, पहिले विद्यार्थी ने क्या कुछ कम परिश्रम किया था?

यह भी ध्यान रहे कि यदि अकेले "कर्म" के भरोसे निठल्ले बैठे रहोगे और हाथ पैर न हिलाओगे तो सफलता नहीं मिलेगी। सफलता तो प्रयत्न से मिलती है, किन्तु उसके लिये कर्म की अनुकूलता होनी चाहिये। कर्म कर्म कहते सभी हैं, परन्तु कर्म के मर्म को नहीं जानते। आओ तुम्हें संक्षेप में इस पाठ में कर्म का कुछ रहस्य समझावें।

कर्म—उन पुद्गल परमाणुओं को कहते हैं जो आत्मा का असली स्वभाव प्रकट नहीं होने देते, जैसे बादल सूर्य के सामने आकर उसके प्रकाश को ढक देते हैं उसी प्रकार बहुत से पुद्गल परमाणु (छोटे २ टुकड़े) जो इस लोक में सब जगह भरे हुए हैं, आत्मा में क्रोधादि कषायों के पैदा होने से खिंच कर आत्मा के प्रदेशों में मिलकर आत्मा के स्वभाव को ढक देते हैं। कषायों के संबंध से उन पुद्गल परमाणुओं में दुःख देने की शक्ति भी हो जाती है इन्हीं पुद्गल परमाणुओं को कर्म कहते हैं

कर्म आठ हैं (१) ज्ञानावरण (२) दर्शनावरण (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयु (६) नाम (७) गोत्र और (८) अन्तराय।

१—ज्ञानावरण—कर्म उसे कहते हैं जो आत्मा के ज्ञान गुण को प्रगट न होने दे। जैसे एक प्रतिमा पर पर्दा डाल दिया जावे, तो वह प्रतिमा को ढके रहता है, उसे प्रगट नहीं होने देता। इसी प्रकार ज्ञानावरणी कर्म आत्मा के ज्ञानगुण को ढके रहता है प्रगट नहीं होने देता जैसे मोहन अपना पाठ खूब परिश्रम से याद करता है, परन्तु उसे याद नहीं होता। इससे मोहन के ज्ञानावरण कर्म का उदय समझना चाहिये। ईर्षा से सच्चे उपदेश की प्रशंसा न करना, अपने ज्ञान को छुपाना अर्थात् दूसरों के पूछने पर न बताना। दूसरोंको इस भाव से कि पढ़ कर मेरे बराबर हो जायगा, नहीं पढ़ाना। दूसरों के पढ़ने में विघ्न डालना, उनकी पुस्तकें छिपा देना, बिगाड़ देना, दूसरों को सत्य उपदेश देने तथा सुनने से रोकना। सच्चे उपदेश को दोष लगाना गुरु और विद्वानों की निन्दा करना पढ़ने में आलस्य करना।) इत्यादि कार्यों से ज्ञानावरण कर्म बंधता है, जितना २ ज्ञानावरण कर्म हटता जाता है, ज्ञान चमकता जाता है।

२-दर्शनावरण कर्म—उसे कहते हैं जो आत्मा के दर्शन गुण को प्रगट न होने दे । जैसे एक राजा का दरबान पहरे पर बैठा हुआ है वह किसी को भी अंदर जाकर राजा के दर्शन नहीं करने देता सब को बाहर से ही रोक देता है। इसी प्रकार दर्शनावरण कर्म किसी को दर्शन नहीं होने देता। जैसे सोहन मन्दिर में दर्शन करनेके लिये गया, परन्तु मंदिर का ताला लगा पाया इससे समझना चाहिये कि सोहन के दर्शनावरण कर्म का उदय है।

३—वेदनीय कर्म—उसे कहते हैं जो आत्मा के लिये सुख दुःख की सामग्री का संबंध मिलावे इस कर्म के उदय से संसारी जीवों को ऐसी चीजों का मिलाप होता है जिन के कारण वह सुख दुख मालूम करते हैं जैसे शहद लपेटी तलवार की धार चाटने से सुख दुख दोनों होते हैं अर्थात् शहद मीठा लगता है, इससे तो सुख होता है, परन्तु तलवार की धार से जीभ कट जाती है इससे दुख होता है। इस प्रकार वेदनीय कर्म सुख और दुख दोनों देता है। जैसे प्रकाशचन्द ने लड्डू खाया अच्छा लगा और पैर में कांटा पड़ गया दुख हुआ दोनों ही हालतों में वेदनीय कर्म का उदय समझना चाहिये।

वेदनीय कर्म के दो भेद हैं (१) सातावेदनीय

(२) असाता वेदनीय।

सातावेदनीय कर्म उसे कहते हैं जिसके उदय से सुख देने वाली वस्तुएँ मिलें।

असाता वेदनीय उसे कहते हैं जिसके उदय से दुख देने वाली वस्तुएँ मिलें।

सब जीवों पर दया करना, चार प्रकार का दान देना, पूजन करना, व्रत पालन करना, क्षमा धारण करना, लोभ नहीं करना, संतोष धारण करना, समता भाव से दुख सह लेना इत्यादि कार्यों से सातावेदनीय (सुख देने वाला कर्म) का बन्ध होता है।

अपने आपको या दूसरे को दुख देना, शोक में डालना, पछतावा करना, कराना, मारना, पीटना, रोना रुलाना तथा रो रो कर ऐसा विलाप करना कि सुनने वाले का दिल धड़क उठे, इस प्रकार के कार्यों से असाता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है।

४-मोहनीयकर्म--जिसके उदय से यह आत्मा अपने आपको भूल जावे और अपने से जुदी चीजों में लुभा जावे जैसे शराब पीने वाला शराब पीकर अपने आपको भूल जाता है उसे भले बुरे का ज्ञान नहीं रहता और न वह भाई बहिन स्त्री पुत्रादि को पहिचान सकता है, इसी प्रकार

मोहनीय कर्म इस जीव को भुला देता है।

जैसे कोई शीतला, पीपल आदि को देव मानता है, तथा क्रोध में आकर किसी दूसरे के प्राणों का हरण करता है या लोभ के वश होकर दूसरे को लूटता है तो समझना चाहिये कि उसके मोहनीय कर्म का उदय है।

मोहनीय कर्म सब कर्मों का राजा कहलाता है। इस लिये इसी पर विजय प्राप्त करने का उद्यम करना चाहिए।

५—आयु कर्म उसे कहते हैं जो आत्मा को नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव शरीरों में से किसी एक में रोके रक्खे जैसे एक मनुष्य का पैर काठ में (शिकंजे में) फंसा हुआ है, अब वह काठ उस मनुष्य को उस स्थान पर रोके हुवे है जब तक उसका पैर उस काठ में जकड़ा रहेगा तब तक वह मनुष्य दूसरी जगह नहीं जा सकता। इसी प्रकार आयु कर्म इस जीव को मनुष्य तिर्यञ्च आदि के शरीर में रोके हुये है। जब तक आयु कर्म रहेगा तब तक वह जीव उसी शरीर में रहेगा। हमारा जीव मनुष्य शरीर में रुका हुआ है। इससे समझना चाहिये कि हमारे मनुष्य आयु कर्म का उदय है।

बहुत आरम्भ करने से, बहुत परिग्रह रखने से तथा घोर हिंसा करने से नरक आयु का बन्ध होता है अर्थात् ऐसा करने से जीव नरक में जाता है।

छल, कपट, दगा, फरेब करने से जीव के तिर्यंच आयु का बन्ध होता है, अर्थात् ऐसा करने से यह जीव तिर्यंच होता है।

थोड़ा आरम्भ करने से, थोड़ा परिग्रह रखने से, कोमल परिणाम रखने से, परोपकार करने, दया पालने से मनुष्य आयु का बन्ध होता है। अर्थात् ऐसा करने से यह जीव मनुष्य पैदा होता है।

व्रत उपवास आदि करने से, शान्तिपूर्वक भूख प्यास गर्मी सर्दी आदि के दुख सहने से, सत्यधर्म का प्रचार करने से, सत्यधर्म की प्रभावना करने से इत्यादिक और शुभ कारणों से यह जीव देव होता है।

६—नाम कर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से इस जीव के अच्छे या बुरे शरीर और उसके अंगोपांग की रचना हो। जैसे कोई चित्रकार (तसवीर बनाने वाला) अनेक प्रकार के चित्र बनाता है, कोई मनुष्य का, कोई स्त्री का, कोई घोड़े का, कोई हाथी का।

किसी का हाथ लम्बा, किसी का छोटा, कोई कुबड़ा, कोई बौना, कोई रूपवान, कोई भद्दा, इसी प्रकार नाम कर्म भी इसी जीव को कभी सुन्दर, कभी चपटी नाक वाला, कभी दांत वाला, कभी कुबड़ा, कभी काला, कभी गोरा,

कभी सुरीली आवाज वाला, कभी मीठी आवाज़ वाला, अनेक रूप परिणमाता है। हमारा शरीर नाक, कान, आंख, हाथ, पांव आदि सब अंगोपांग नाम कर्म के उदय से ही बने हुवे हैं।

इस कर्म के दो भेद हैं अशुभनाम कर्म और शुभनाम कर्म। कुटिलता से, घमण्ड करने से, आपस में लड़ाई झगड़ा कलह करने से, झूठे देवों के पूजने से, किसी की चुगली करने से, दूसरों का बुरा सोचने से तथा दूसरों की नक़ल करने से, अनेक अशुभ कार्यों से अशुभ नाम कर्म का बन्ध होता है।

सरलता से, आपस में प्रेम रखने से, धर्मात्मा गुणी जनों को देखकर खुश होने से, दूसरों का भला चाहने से इत्यादि और शुभ कारणों से शुभ नाम कर्म का बंध होता है।

७--गोत्रकर्म—उसे कहते हैं जो इस जीव को ऊंच कुल या नीच कुल में पैदा करे—जैसे कुम्हार छोटे बड़े सब प्रकार के बरतन बनाता है, उसी प्रकार गोत्र कर्म इस जीव को उच्च या नीच बना देता है। उच्च गोत्र कर्म के उदय से यह जीव अच्छे चारित्र वाले लोक मान्य कुल में जन्म लेता है और नीच गोत्र कर्म के उदय

से यह जीव खोटे खोटे आचरण वाले लोकनिंद्य कुल में पैदा होता है! जहाँ हिंसा, झूठ, चोरी आदि और पाप कर्म करता है।

दूसरों की निंदा करने से, अपनी प्रशंसा करने से दूसरों के होते हुये भी गुणों के छिपाने से, और अपने न होते हुये भी गुणों के प्रकट करने से, तथा देव शास्त्र गुरु का अविनय करने से, अपने जाति, कुल, विद्या, बल, रूप आदि का मान करने से नीच गोत्र कर्म का बन्ध होता है।

अपनी निंदा, दूसरों की प्रशंसा करने से, अभिमान न करने से, विनयवान होने से उच्च गोत्र का बंध होता है।

८–अन्तराय कर्म–उसे कहते हैं जिसके उदय से किसी जीव के कार्य में विघ्न पड़ जावे। जैसे किसी राजा साहब ने किसी याचक को कुछ रुपया देने का हुकम दिया, परन्तु खजानची ने कुछ बीच में गड़बड़ अथवा कोई बहाना करके वह रुपया नहीं दिया, अर्थात उस याचक को रुपया मिलने में खजानची साहिब विघ्न रूप हो गये। ठीक इसी कार अन्तराय कर्म इस जीव के दान, लाभ, भोग (जो वस्तु एक बार काम में आवे जैसे आहार पानी) उपभोग

(जो वस्तु एक बार काम में आकर फिर भी काम आवे जैसे—वस्त्र मकान सवारी आदि) और बल इन पाँचों के होने में विघ्न डालता है।

जैसे किसी ने दान देने के लिये १०००) रुपये का नोट उठा कर रखा, कोई उसे चुरा कर ले गया या जैसे कोई रोटी खाने लगा तो अकस्मात् बन्दर आकर हाथ से रोटी छीन ले गया, तो ऐसी हालत में अन्तराय कर्म का उदय समझना चाहिये।

किसी को लाभ होता हो तो न होने देना, बालकों को विद्या न पढ़ाना, अपने आधीन नौकरों को धर्म सेवन न करने देना, दान देते हुए को रोकना, दूसरों की भोग उपभोग की सामग्री बिगाड देना, ऐसे कार्यों के करने से जीव के अन्तराय कर्म का बन्ध होता है।

प्रश्नावली

१ दुनिया में ऐसी कौनसी शक्ति है जिसके सामने किया हुआ परिश्रम भी व्यर्थ हो जाता है ?

२ 'परिश्रम' व कर्म इन दोनों से तुम क्या समझते हो ? क्या भाग्य (कर्म) के भरोसे बैठे रहने से हमारे इच्छित कार्य पूर्ण हो सकते हैं ? यदि नहीं तो क्यों ?

३ कर्म किसे कहते हैं ? और ये कितने होते हैं ? नाम बताओ।

४ असाता वेदनीय, चारित्र मोहनीय, शुभ नाम कर्म और ऊंच गोत्र किन किन कारणों मे बंधते हैं ?

५ सबसे बड़ा कर्म कौनसा है ? ज्ञानावरणी दर्शनावरणी कर्म का क्या कार्य है ?

६ बताओ तुम्हें मनुष्य शरीर में रोकने वाला कौनसा कर्म है ? और कौनसे कार्य करने से तुम्हें मनुष्य गति मिली है ।

७ अन्तराय कर्म किसे कहते हैं ? एक लड़की के माता पिता ने जबरदस्ती अपनी लड़की को पाठशाला से उठा लिया तो बताओ उसके माता पिता को कौनसा कर्म बंध हुआ ?

८ बताओ नीचे लिखों को किन २ कर्मों का उदय है ।

(क) श्याम ने वर्ष भर तक खूब कठिन परिश्रम किया परन्तु परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हुआ ?

(ख) मोहन नित प्रति दीन दुखी जीवों को करुणा बुद्धि से रोटी वस्त्र आदि का दान देता है ? परन्तु लोग फिर भी उसकी निन्दा ही करते हैं ?

(ग) यद्यपि राम के यहाँ नित प्रति अच्छे २ स्वादिष्ट फल खाने को आते हैं पर डाक्टर ने उसे खाने से मना किया हुआ है ।

(घ) सोहन बड़ा आलसी है तमाम दिन सोता ही रहता है ।

(ङ) गोविन्द बड़ा मालदार है हम कई बार उससे औषधालय तथा कन्या पाठशाला के लिये चन्दा माँगने गये परन्तु वह इतना कंजूस है कि उसके हाथ से एक पैसा भी नहीं छुटा ।

(च) मोहन की आँखों में ऐसा दर्द हुआ कि अन्त में विचारा अन्धा ही हो गया।

९ समझा कर बताओ कि नीचे लिखों को किन २ कर्म का बन्ध हुआः—

(क) लड़के के फेल हो जाने पर श्याम ने अध्यापकों को बड़ी गालियाँ दी और पाठशाला को ताला लगवा कर छोड़ा।

(ख) पाठशाला में आते हुए कुछ छात्रों को एक शराबी ने बड़ी गालियाँ दी। उनकी पुस्तकें फाड़ दी, किसी की आँख फोड़दी, किसी की टाँग तोड़दी।

(ग) राम कैसे धर्मात्मा आदमी हैं नित प्रति मन्दिर में शास्त्र पढ़ते हैं, कुछ वेतन नहीं लेते, पर फिर भी लोग मन्दिर से बाहर निकलते ही उनकी निन्दा किया करते हैं और बुरे से बुरा लाँछन लगाने को तत्पर रहते हैं ?

(घ) मोहन बड़ा मानी है। आज त्यागी जी महाराज और हम एक छात्र की सहायता के लिये गये, बात तक न सुनी, तेवड़ी में बल डाल लिया और झट से हमें बाहर खड़ा कर घर में घुस गया।

(ङ) सुभद्रा सवेरे सात बजे से आठ बजे तक मंदिर में बैठी रहती है, जो कोई भी लड़की या स्त्री आती है, किसी को आलोचना पाठ व भक्तामर सुनाती है किसी को किसी व्रत की कथा सुनाती है और किसी से भी पैसा तक नहीं लेती

(च) क्या कहने हैं राम के | बड़ा उद्दंड है, मंदिर में आता है वहाँ भी चुपका नहीं रहता। किसी की निंदा, तो किसी को गाली । महा मानी, जो मिल जाय उसी को धमकाना, किसी की पूजा में विघ्न डालना तो किसी को स्वाध्याय न करने देना, निराले ही ढंग का आदमी है ।

पाठ ७

भजन (रे मन !)

(१)

रे मन ! भज भज दीन दयाल,
जा के नाम लेत इक छिन में ।
कटें कोट अघ जाल,
रे मन ! भज भज दीन दयाल ।

(२)

परम ब्रह्म परमेश्वर स्वामी,
देखे होत निहाल ।
सुमरन करत परम सुख पावत
सेवत भाजे काल ।
रे मन, भज भज दीन दयाल,

(३)

इन्द्र फनींद्र चक्रधर गावें,
जा को नाम रसाल,
जा को नाम ज्ञान प्रकाशै,
नाशै मिथ्या जाल ।
रे मन भज भज दीन दयाल ।

(४)

जा के नाम समान नहीं कुछ,
ऊरध मध्य पताल ।
सोई नाम जपो नित "द्यानत"
छांड़ि विषय विकराल ।
रे मन ! भज भज दीन दयाल ।

प्रश्नावली

१ दीन दयाल से तुम क्या समझते हो ? और बताओ दीन दयाल कौन है ?

२ परमात्मा का नाम जपने से क्या लाभ है ?

३ बताओ इस भजन के बनाने वाले कौन हैं ?

४ इस भजन का तीसरा छंद कण्ठस्थ सुनाओ ।

पाठ ८

जम्बु कुमार

तीर्थंकर महावीर स्वामी के समय की बात है। उस समय मगध देश में राजा श्रेणिक राज्य करता था। उस समय के राजाओं में श्रेणिक बहुत प्रसिद्ध और पराक्रमी राजा था। राजग्रह उसकी राजधानी थी। वहीं पर उसका राज्य सेठ रहता था। उसका नाम जिनदत्त था जम्बुकुमार इसी राज्य सेठ का पुत्र था।

जम्बुकुमार ने जब होश संभाला, तो उसे ऋषिगिर जैनाश्रम में पढ़ने के लिये भेज दिया गया। वहां जम्बु-कुमार एक ब्रह्मचारी का जीवन बिताता था और अपने गुरुओं की आज्ञानुसार शास्त्रविज्ञान, कला, कौशल और अस्त्र शस्त्र की शिक्षा पाता था। इसी प्रकार तपोधन गुरुओं की संगति में रहते हुए युवावस्था तक पहुँचते २ जम्बुकुमार शस्त्र शास्त्र में निपुण हो गया। गुरुजन ने उसको अपने आश्रम से बिदा किया। वह विनयपूर्वक गुरुजन का आशीर्वाद लेकर घर आया, माता पिता अपने पुत्र को सब विद्याओं में निपुण देखकर फूले अंग न समाये।

जीव–अजीवतत्त्व निर्णयकर, करती संशय–हान।
साम्य भावरस चखते हैं जो, करते इसका पान॥
ऊँच,नीच औ लघु-सुदीर्घ का, भेद न कर भगवान।
सबके हित की चिन्ता करती, सब पर दृष्टि समान॥
अन्धी श्रद्धा का विरोध कर, हरती सब अज्ञान।
युक्ति-वाद का पाठ पढ़ा कर, कर देती सज्ञान॥
ईश न जगकर्ता, फलदाता, स्वयं सृष्टि-निर्माण।
निज उत्थान-पतन निजकरमें, करती यों सुविधान॥
हृदय बनाती उच्च,सिखाकर, धर्मसुदया–प्रधान।
जो नित समझ आदरें इसको, वे 'युगवीर' महान॥

प्रश्नावली

१—महावीर वाणी के रचयिता कौन हैं ?

२—महावीर वाणी का नित्य पाठ करने से हमारे भावों में क्या विचार उत्पन्न होते हैं और इससे क्या शिक्षा मिलती है ?

३—इस जगत का कर्त्ता, हर्त्ता कौन है ?

४—क्या हमारे कर्मों का फलदाता कोई है ?

पाठ ६

कर्म

प्यारे बालको ! तुम नित प्रति संसार में देखते हो, कोई सवेरे से शाम तक कठिन परिश्रम करता है, फिर भी उसे सफलता प्राप्त नहीं होती। कोई थोड़े ही परिश्रम से अपने कार्य में सफलता प्राप्त कर लेता है। कोई २ थोड़े परिश्रम करने से ही अधिक विद्या सम्पादन कर लेते हैं, और कोई २ घोर परिश्रम करने पर भी मूर्ख बने रहते है। कितने ही लोग धन उपार्जन के लिये दिन रात नहीं गिनते, फिर भी दरिद्रता उनका पीछा नहीं छोड़ती। स्वामी और सेवक में से सेवक ही अधिक परिश्रम करता है और यही निर्धन होता है। ऐसी ऐसी बातों पर विचार करने से विदित होता है कि जहाँ छोटे से छोटे और बड़े से बड़े कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये परिश्रम की आवश्यकता है, वहाँ साथ ही किसी और शक्ति विशेष की भी आवश्यकता है। वह शक्ति कर्म है, जिसे लोग भाग्य कहा करते हैं। जब कर्म परिश्रम के अनुकूल होता है, तभी कार्य में सफलता प्राप्त होती है। देखो दो छात्र साथ पढ़ते हैं, समान परिश्रम करते हैं, उन में से एक

परीक्षा के समय बीमार हो जाता है, परीक्षा देने नहीं पाता। दूसरा परीक्षा देकर पास हो जाता है, यह सब कर्म का माहात्म्य है, पहिले विद्यार्थी ने क्या कुछ कम परिश्रम किया था ?

यह भी ध्यान रहे कि यदि अकेले "कर्म" के भरोसे निठल्ले बैठे रहोगे और हाथ पैर न हिलाओगे तो सफलता नहीं मिलेगी। सफलता तो प्रयत्न से मिलती है, किन्तु उसके लिये कर्म की अनुकूलता होनी चाहिये। कर्म कर्म कहते सभी हैं, परन्तु कर्म के मर्म को नहीं जानते। आओ तुम्हें संक्षेप में इस पाठ में कर्म का कुछ रहस्य समझावें।

कर्म—उन पुद्गल परमाणुओं को कहते हैं जो आत्मा का असली स्वभाव प्रकट नहीं होने देते, जैसे बादल सूर्य के सामने आकर उसके प्रकाश को ढक देते है उसी प्रकार बहुत से पुद्गल परमाणु (छोटे २ टुकड़े) जो इस लोक में सब जगह भरे हुए हैं, आत्मा में क्रोधादि कषायों के पैदा होने से खिंच कर आत्मा के प्रदेशों से मिलकर आत्मा के स्वभाव को ढक देते हैं। कषायों के संबंध से उन पुद्गल परमाणुओं में दुःख देने की शक्ति भी हो जाती है इन्हीं पुद्गल परमाणुओं को कर्म कहते हैं

कर्म आठ हैं (१) ज्ञानावरण (२) दर्शनावरण (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयु (६) नाम (७) गोत्र और (८) अन्तराय।

१–ज्ञानावरण—कर्म उसे कहते हैं जो आत्मा के ज्ञान गुण को प्रगट न होने दे। जैसे एक प्रतिमा पर पर्दा डाल दिया जावे, तो वह प्रतिमा को ढके रहता है, उसे प्रगट नहीं होने देता। इसी प्रकार ज्ञानावरणी कर्म आत्मा के ज्ञानगुण को ढके रहता है प्रगट नहीं होने देता जैसे मोहन अपना पाठ खूब परिश्रम से याद करता है, परन्तु उसे याद नहीं होता। इससे मोहन के ज्ञानावरण कर्म का उदय समझना चाहिये। ईर्षा से सच्चे उपदेश की प्रशंसा न करना, अपने ज्ञान को छुपाना अर्थात् दूसरों के पूछने पर न बताना। दूसरोंको इस भाव से कि पढ़ कर मेरे बराबर हो जायगा, नहीं पढ़ाना। दूसरों के पढ़ने में विघ्न डालना, उनकी पुस्तकें छिपा देना, बिगाड़ देना, दूसरों को सत्य उपदेश देने तथा सुनने से रोकना। सच्चे उपदेश को दोष लगाना गुरु और विद्वानों की निन्दा करना पढ़ने में आलस्य करना।) इत्यादि कार्यों से ज्ञानावरण कर्म बंधता है, जितना २ ज्ञानावरण कर्म हटता जाता है, ज्ञान चमकता जाता है।

२-दर्शनावरण कर्म—उसे कहते हैं जो आत्मा के दर्शन गुण को प्रगट न होने दे । जैसे एक राजा का दरबान पहरे पर बैठा हुआ है वह किसी को भी अंदर जाकर राजा के दर्शन नहीं करने देता सब को बाहर से ही रोक देता है। इसी प्रकार दर्शनावरण कर्म किसी को दर्शन नहीं होने देता। जैसे सोहन मन्दिर में दर्शन करनेके लिये गया, परन्तु मंदिर का ताला लगा पाया इससे समझना चाहिये कि सोहन के दर्शनावरण कर्म का उदय है।

३—वेदनीय कर्म—उसे कहते हैं जो आत्मा के लिये सुख दुःख की सामग्री का संबंध मिलावे इस कर्म के उदय से संसारी जीवों को ऐसी चीजों का मिलाप होता है जिन के कारण वह सुख दुख मालूम करते हैं जैसे शहद लपेटी तलवार की धार चाटने से सुख दुख दोनों होते हैं अर्थात् शहद मीठा लगता है, इससे तो सुख होता है, परन्तु तलवार की धार से जीभ कट जाती है इससे दुख होता है। इस प्रकार वेदनीय कर्म सुख और दुख दोनों देता है। जैसे प्रकाशचन्द ने लड्डू खाया अच्छा लगा और पैर में कांटा पड़ गया दुख हुआ दोनों ही हालतों में वेदनीय कर्म का उदय समझना चाहिये।

वेदनीय कर्म के दो भेद हैं (१) सातावेदनीय

(२) असाता वेदनीय।

सातावेदनीय कर्म उसे कहते हैं जिसके उदय से सुख देने वाली वस्तुएँ मिलें।

असाता वेदनीय उसे कहते हैं जिसके उदय से दुःख देने वाली वस्तुएँ मिलें।

सब जीवों पर दया करना, चार प्रकार का दान देना, पूजन करना, व्रत पालन करना, क्षमा धारण करना, लोभ नहीं करना, संतोष धारण करना, समता भाव से दुःख सह लेना इत्यादि कार्यों से सातावेदनीय (सुख देने वाला कर्म) का बन्ध होता है।

अपने आपको या दूसरे को दुःख देना, शोक में डालना, पछतावा करना, कराना, मारना, पीटना, रोना रुलाना तथा रो रो कर ऐसा विलाप करना कि सुनने वाले का दिल धड़क उठे, इस प्रकार के कार्यों से असाता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है।

४-मोहनीयकर्म—जिसके उदय से यह आत्मा अपने आपको भूल जावे और अपने से जुदी चीजों में लुभा जावे जैसे शराब पीने वाला शराब पीकर अपने आपको भूल जाता है उसे भले बुरे का ज्ञान नहीं रहता और न वह भाई बहिन स्त्री पुत्रादि को पहिचान सकता है, इसी प्रकार

मोहनीय कर्म इस जीव को भुला देता है।

जैसे कोई शीतला, पीपल आदि को देव मानता है, तथा क्रोध में आकर किसी दूसरे के प्राणों का हरण करता है या लोभ के वश होकर दूसरे को लूटता है तो समझना चाहिये कि उसके मोहनीय कर्म का उदय है।

मोहनीय कर्म सब कर्मों का राजा कहलाता है। इस लिये इसी पर विजय प्राप्त करने का उद्यम करना चाहिए।

५—आयु कर्म उसे कहते हैं जो आत्मा को नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव शरीरों में से किसी एक में रोके रक्खे जैसे एक मनुष्य का पैर काठ में (शिकंजे में) फंसा हुआ है, अब वह काठ उस मनुष्य को उस स्थान पर रोके हुये है जब तक उसका पैर उस काठ में जकड़ा रहेगा तब तक वह मनुष्य दूसरी जगह नहीं जा सकता। इसी प्रकार आयु कर्म इस जीव को मनुष्य तिर्यञ्च आदि के शरीर में रोके हुये है। जब तक आयु कर्म रहेगा तब तक वह जीव उसी शरीर में रहेगा। हमारा जीव मनुष्य शरीर में रुका हुआ है। इससे समझना चाहिये कि हमारे मनुष्य आयु कर्म का उदय है।

बहुत आरम्भ करने से, बहुत परिग्रह रखने से तथा घोर हिंसा करने से नरक आयु का बन्ध होता है अर्थात् ऐसा करने से जीव नरक में जाता है।

छल, कपट, दगा, फ़रेब करने से जीव के तिर्यंच आयु का बन्ध होता है, अर्थात् ऐसा करने से यह जीव तिर्यंच होता है।

थोड़ा आरम्भ करने से, थोड़ा परिग्रह रखने से, कोमल परिणाम रखने से, परोपकार करने, दया पालने से मनुष्य आयु का बन्ध होता है। अर्थात् ऐसा करने से यह जीव मनुष्य पैदा होता है।

व्रत उपवास आदि करने से, शान्तिपूर्वक भूख प्यास गर्मी सर्दी आदि के दुख सहने से, सत्यधर्म का प्रचार करने से, सत्यधर्म की प्रभावना करने से इत्यादिक और शुभ कारणों से यह जीव देव होता है।

६—नाम कर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से इस जीव के अच्छे या बुरे शरीर और उसके अंगोपांग की रचना हो। जैसे कोई चित्रकार (तसवीर बनाने वाला) अनेक प्रकार के चित्र बनाता है, कोई मनुष्य का, कोई स्त्री का, कोई घोड़े का, कोई हाथी का।

किसी का हाथ लम्बा, किसी का छोटा, कोई कुबड़ा, कोई बौना, कोई रूपवान, कोई भद्दा, इसी प्रकार नाम कर्म भी इसी जीव को कभी सुन्दर, कभी चपटी नाक वाला, कभी दांत वाला, कभी कुबड़ा, कभी काला, कभी गोरा,

कभी सुरीली आवाज़वाला, कभी मीठी आवाज़ वाला, अनेक रूप परिणमाता है। हमारा शरीर नाक, कान, आंख, हाथ, पांव आदि सब अंगोपांग नाम कर्म के उदय से ही बने हुवे हैं।

इस कर्म के दो भेद हैं अशुभनाम कर्म और शुभनाम कर्म। कुटिलता से, घमण्ड करने से, आपस में लड़ाई झगड़ा कलह करने से, झूठे देवों के पूजने से, किसी की चुगली करने से, दूसरों का बुरा सोचने से तथा दूसरों की नक़ल करने से, अनेक अशुभ कार्यों से अशुभ नाम कर्म का बन्ध होता है।

सरलता से, आपस में प्रेम रखने से, धर्मात्मा गुणी जनों को देखकर खुश होने से, दूसरों का भला चाहने से इत्यादि और शुभ कारणों से शुभ नाम कर्म का बंध होता है।

७--गोत्रकर्म—उसे कहते हैं जो इस जीव को ऊंच कुल या नीच कुल में पैदा करे—जैसे कुम्हार छोटे बड़े सब प्रकार के बरतन बनाता है, उसी प्रकार गोत्र कर्म इस जीव को उच्च या नीच बना देता है। उच्च गोत्र कर्म के उदय से यह जीव अच्छे चारित्र वाले लोक मान्य कुल में जन्म लेता है और नीच गोत्र कर्म के उदय

से यह जीव खोटे खोटे आचरण वाले लोकनिंद्य कुल में पैदा होता है! जहाँ हिंसा, झूठ, चोरी आदि और पाप कर्म करता है।

दूसरों की निंदा करने से, अपनी प्रशंसा करने से दूसरों के होते हुये भी गुणों के छिपाने से, और अपने न होते हुये भी गुणों के प्रकट करने से, तथा देव शास्त्र गुरु का अविनय करने से, अपने जाति, कुल, विद्या, बल, रूप आदि का मान करने से नीच गोत्र कर्म का बन्ध होता है।

अपनी निंदा, दूसरों की प्रशंसा करने से, अभिमान न करने से, विनयवान होने से उच्च गोत्र का बंध होता है।

८—अन्तराय कर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से किसी जीव के कार्य में विघ्न पड़ जावे। जैसे किसी राजा साहब ने किसी याचक को कुछ रुपया देने का हुक्म दिया, परन्तु खजानची ने कुछ बीच में गड़बड़ अथवा कोई बहाना करके वह रुपया नहीं दिया, अर्थात् उस याचक को रुपया मिलने में खजानची साहिब विघ्न रूप हो गये! ठीक इसी कार अन्तराय कर्म इस जीव के दान, लाभ, भोग (जो वस्तु एक बार काम में आवे जैसे आहार पानी) उपभोग

(जो वस्तु एक बार काम में आकर फिर भी काम आवे जैसे–वस्त्र मकान सवारी आदि) और बल इन पाँचों के होने में विघ्न डालता है।

जैसे किसी ने दान देने के लिये १०००) रुपये का नोट उठा कर रखा, कोई उसे चुरा कर ले गया या जैसे कोई रोटी खाने लगा तो अकस्मात् बन्दर आकर हाथ से रोटी छीन ले गया, तो ऐसी हालत में अन्तराय कर्म का उदय समझना चाहिये।

किसी को लाभ होता हो तो न होने देना, बालकों को विद्या न पढ़ाना, अपने आधीन नौकरों को धर्म सेवन न करने देना, दान देते हुए को रोकना, दूसरों की भोग उपभोग की सामग्री बिगाड़ देना, ऐसे कार्यों के करने से जीव के अन्तराय कर्म का बन्ध होता है।

प्रश्नावली

१ दुनिया में ऐसी कौनसी शक्ति है जिसके सामने किया हुआ परिश्रम भी व्यर्थ हो जाता है ?

२ 'परिश्रम' व कर्म इन दोनों में तुम क्या समझते हो ? क्या भाग्य (कर्म) के भरोसे बैठे रहने से हमारे इच्छित कार्य पूर्ण हो सकते हैं ? यदि नहीं तो क्यों ?

३ कर्म किसे कहते हैं ? और ये कितने होते हैं ? नाम बताओ।

४ असाता वेदनीय, चारित्र मोहनीय, शुभ नाम कर्म और ऊंच गोत्र किन किन कारणों में बंधते हैं ?

५ सबसे बड़ा कर्म कौनसा है ? ज्ञानावरणी दर्शनावरणी कर्म का क्या कार्य है ?

६ बताओ तुम्हें मनुष्य शरीर में रोकने वाला कौनसा कर्म है ? और कौनसे कार्य करने से तुम्हें मनुष्य गति मिली है।

७ अन्तराय कर्म किसे कहते हैं ? एक लड़की के माता पिता ने जबरदस्ती अपनी लड़की को पाठशाला से उठा लिया तो बताओ उसके माता पिता को कौनसा कर्म बंध हुआ ?

८ बताओ नीचे लिखों को किन २ कर्मों का उदय है।

(क) श्याम ने वर्ष भर तक खूब कठिन परिश्रम किया परन्तु परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हुआ ?

(ख) मोहन नित प्रति दीन दुखी जीवों को करुणा बुद्धि से रोटी वस्त्र आदि का दान देता है ? परन्तु लोग फिर भी उसकी निन्दा ही करते हैं ?

(ग) यद्यपि राम के यहाँ नित प्रति अच्छे २ स्वादिष्ट फल खाने को आते हैं पर डाक्टर ने उसे खाने से मना किया हुआ है।

(घ) सोहन बड़ा आलसी है तमाम दिन सोता ही रहता है।

(ङ) गोविन्द बड़ा मालदार है हम कई बार उससे औषधालय तथा कन्या पाठशाला के लिये चन्दा माँगने गये परन्तु वह इतना कंजूस है कि उसके हाथ से एक पैसा भी नहीं छुटा।

(च) मोहन की आँखों में ऐसा दर्द हुआ कि अन्त में विचारा अन्धा ही हो गया।

६ समझा कर बताओ कि नीचे लिखों को किन २ कर्म का बन्ध हुआ:—

(क) लड़के के फेल हो जाने पर श्याम ने अध्यापकों को बड़ी गालियाँ दी और पाठशाला को ताला लगवा कर छोड़ा।

(ख) पाठशाला में आते हुए कुछ छात्रों को एक शराबी ने बड़ी गालियाँ दी। उनकी पुस्तकें फाड़ दी, किसी की आँख फोड़दी, किसी की टाँग तोड़दी।

(ग) राम कैसे धर्मात्मा आदमी हैं नित प्रति मन्दिर में शास्त्र पढ़ते हैं, कुछ वेतन नहीं लेते, पर फिर भी लोग मन्दिर से बाहर निकलते ही उनकी निन्दा किया करते हैं और बुरे से बुरा लाँछन लगाने को तत्पर रहते हैं?

(घ) मोहन बड़ा मानी है। आज त्यागी जी महाराज और हम एक छात्र की सहायता के लिये गये, बात तक न सुनी, तेवड़ी में बल डाल लिया और झट से हमें बाहर खड़ा कर घर में घुस गया।

(ङ) सुभद्रा सवेरे सात बजे से आठ बजे तक मंदिर में बैठी रहती है, जो कोई भी लड़की या स्त्री आती है, किसी को आलोचना पाठ व भक्तामर सुनाती है किसी को किसी व्रत की कथा सुनाती है और किसी से भी पैसा तक नहीं लेती

(च) क्या कहने हैं राम के। बड़ा उद्दंड है, मंदिर में आता है वहाँ भी चुपका नहीं रहता। किसी की निंदा, तो किसी को गाली। महा मानी, जो मिल जाय उसी को धमकाना, किसी की पूजा में विघ्न डालना तो किसी को स्वाध्याय न करने देना, निराले ही ढंग का आदमी है।

पाठ ७

भजन (रे मन!)

(१)

रे मन! भज भज दीन दयाल,
जा के नाम लेत इक छिन में।
कटें कोटि अघ जाल,
रे मन! भज भज दीन दयाल।

(२)

परम ब्रह्म परमेश्वर स्वामी,
देखे होत निहाल।
सुमरन करत परम सुख पावत
सेवत भाजे काल।
रे मन, भज भज दीन दयाल,

(३)

इन्द्र फनींद्र चक्रधर गावैं,
जा को नाम रसाल,
जा को नाम ज्ञान प्रकाशै,
नाशै मिथ्या जाल ।
रे मन भज भज दीन दयाल ।

(४)

जा के नाम समान नहीं कुछ,
ऊरध मध्य पताल ।
सोई नाम जपो नित "द्यानत"
छांड़ि विषय विकराल ।
रे मन ! भज भज दीन दयाल ।

प्रश्नावली

१ दीन दयाल से तुम क्या समझते हो ? और बताओ दीन दयाल कौन हैं ?

२ परमात्मा का नाम जपने से क्या लाभ है ?

३ बताओ इस भजन के बनाने वाले कौन हैं ?

४ इस भजन का तीसरा छंद कण्ठस्थ सुनाओ ।

पाठ ८

जम्बु कुमार

तीर्थंकर महावीर स्वामी के समय की बात है। उस समय मगध देश में राजा श्रेणिक राज्य करता था। उस समय के राजाओं में श्रेणिक बहुत प्रसिद्ध और पराक्रमी राजा था। राजग्रह उसकी राजधानी थी। वहीं पर उसका राज्य सेठ रहता था। उसका नाम जिनदत्त था जम्बुकुमार इसी राज्य सेठ का पुत्र था।

जम्बुकुमार ने जब होश संभाला, तो उसे ऋषिगिर जैनाश्रम में पढ़ने के लिये भेज दिया गया। वहां जम्बु-कुमार एक ब्रह्मचारी का जीवन बिताता था और अपने गुरुओं की आज्ञानुसार शास्त्रविज्ञान, कला, कौशल और अस्त्र शस्त्र की शिक्षा पाता था। इसी प्रकार तपोधन गुरुओं की संगति में रहते हुए युवावस्था तक पहुँचते २ जम्बुकुमार शस्त्र शास्त्र में निपुण हो गया। गुरुजन ने उसको अपने आश्रम से बिदा किया। वह विनयपूर्वक गुरुजन का आशीर्वाद लेकर घर आया, माता पिता अपने पुत्र को सब विद्याओं में निपुण देखकर फूले अंग न समाये।

तपोवन में रहने से जम्बुकुमार का स्वभाव बड़ा दयालु और सत्यनिष्ट हो गया था उसके मन को दुनियादारी की थोथी बातें नहीं रिझा पाती थीं। सत्य और न्याय के लिये यह अपना सब कुछ देने के लिये तैयार रहता था। इन गुणों के साथ २ जम्बुकुमार देखने में बड़ा सुन्दर और रूपवान था। उसके रूप और गुणों की चर्चा सारे राजग्रही में होती थी।

राज्य सेठ ने देखा, कि उसका पुत्र विवाह के योग्य होगया है, उसको उसका विवाह करने की चिंता हुई। चार सेठों की पुत्रियों के साथ जम्बुकुमार का संबंध निश्चित किया गया।

राजा श्रेणिक को खबर मिली कि रत्नचूल नामक विद्याधर राजा उसके विरुद्ध हो गया है। उस शत्रु को वश करने की चिंता हुई। एक दिन सभा में राजा श्रेणिक ने कहा "कि कौन योद्धा ऐसा है, कि जो शत्रु को वश कर सके"। सभा में सेठ-कुमार जम्बुकुमार भी बैठा था। वह झट से उठकर खड़ा होगया और कहा—"मैं वश करके ले आऊँगा"। राजा ने आज्ञा दे दी। मंत्रियों की राय से राजा श्रेणिक ने जम्बुकुमार को सेना लेकर रत्नचूल को वश करने के लिये भेजा।

जम्बुकुमार ने अपने रण कौशल्य से उस राजा को जीत लिया। वैश्य पुत्र होते हुये भी उस वीर ने उस क्षत्रिय की वीरता को परास्त कर दिया। राजा श्रेणिक जम्बुकुमार की इस विजय पर बड़े प्रसन्न हुये और कुमार का बड़ा ही सम्मान किया।

जब जम्बुकुमार विजय का डंका बजाते हुये राजग्रही में प्रवेश कर रहे थे, तब नगर के बाहर बन में श्री सुधर्माचार्य का उपदेश हो रहा था। जम्बुकुमार भी सुनने बैठ गये। उपदेश सुनकर कुमार को संसार से वैराग्य हो गया। कुमार ने यह ठान ली कि घर जाकर हम अब विवाह नहीं करेंगे और कल ही आकर साधु हो जायेंगे और आत्मकल्याण करेंगे।

इधर माता पिता जम्बुकुमार की वीरता के समाचार सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। पुत्र ने अवसर पाकर पिता को अपने दीक्षा लेने का विचार कह दिया और विवाह करने से इन्कार कर दिया। यह खबर जब उन लड़कियों को पहुँची, जिनके साथ जम्बुकुमार का संबंध हुआ था, तो उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि "हम तो कुमार को छोड़ कर और किसी के साथ विवाह नहीं करेंगी।" लड़कियों की ऐसी हठ होने पर माता पिता के अति आग्रहवश

वे चारों बधुवें रात्रि को जम्बुकुमार को अपनी रसीली रसीली बातों से मोहित करने लगीं। कुमार वैराग्य भरी बातों से ऐसा उत्तर देते थे कि वे मन में अपनी हार मान जाती थीं।

सवेरा होते ही जम्बुकुमार अपने दृढ़ संकल्प वश घर से चल पड़े। पीछे २ माता पिता, चारों स्त्रियां व एक विद्युतचर चोर जो चोरी करने आया था और कुमार और उनकी स्त्रियों की सब वार्तालाप सुन रहा था चल पड़े। कुमार ने सुधर्माचार्य के पास केशलोंच कर साधुव्रत ग्रहण किया। माता पिता व चारों स्त्रियों ने व विद्युतचर चोर ने भी दीक्षा धारण की। अब जम्बुकुमार दिल लगाकर आत्मध्यान करने लगे और शीघ्र ही केवलज्ञान को प्राप्त किया। ६२ वर्ष पीछे जम्बुकुमार ने मुक्ति प्राप्त की। केवलज्ञान के पीछे श्री जम्बुकुमार ने बहुत वर्षों तक संसार का बड़ा उपकार किया। मथुरा चौरासी का स्थान श्री जम्बुकुमार का निर्वाण क्षेत्र प्रसिद्ध है।

बालको! तुम भी जम्बुकुमार के जीवन से शिक्षा ग्रहण करो। प्रतिज्ञा करलो कि जब तक तुम खूब लिख पढ़कर होशियार न होजावो विवाह नहीं करोगे। पढ़ते

हुये तुम पूरे ब्रह्मचर्य में रहोगे और व्यायाम करके शरीर को पुष्ट रक्खोगे। यदि तुम जम्बुकुमार के समान वीर सैनिक बनोगे तो अपने देश की सच्ची सेवा कर सकोगे तथा अपना आत्म कल्याण कर सकोगे। भावना करो तुम में से प्रत्येक जम्बुकुमार हो, और माता पिता का मुख उज्ज्वल करो।

प्रश्नावली

१ जम्बुकुमार किनके पुत्र थे ? इन्होंने कहां पर अध्ययन किया था और इनका स्वभाव कैसा था ?

२ जम्बुकुमार की वीरता के कार्य वर्णन करो ?

३ जम्बुकुमार को कहाँ और क्यों वैराग्य हो गया था ?

४ वो चारों स्त्रियां कौन थीं जो जम्बुकुमार के गृहत्याग के समय पीछे रह गई थीं ? जम्बुकुमार के वैराग्य लेने के पश्चात् उन स्त्रियों ने क्या किया ?

५ जम्बुकुमार को कहां पर निर्वाण हुआ था ?

६ जम्बुस्वामी की जीवनी से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है ?

पाठ ६

अरहंत परमेष्ठी

परमेष्ठी उसे कहते है जो परमपद में स्थित हो। परमेष्ठी पांच हैं:- १-अरहन्त, २-सिद्ध, ३-आचार्य, ४-उपाध्याय और ५-साधु।

यह पांचों परम इष्ट हैं। इनका ध्यान करने से भावों की शुद्धि और वैराग्य की उत्पत्ति होती है।

अरहन्त परमेष्ठी के ४६ गुण

अरहन्त उन्हें कहते हैं जिनके ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय यह चार घातिया कर्म नाश हो गये हों और इनमें ४६ गुण हों और १८ दोष न हों।

दोहा

चौबीसों अतिशय सहित, प्रातिहार्य पुन आठ।
अनंत चतुष्टय गुण सहित, ये छयालीसों पाठ ॥१॥

अर्थात् अरहन्त के ३४ अतिशय, ८ प्रातिहार्य और ४ अनंत चतुष्टय ये सब ४६ गुण होते हैं। ३४ अतिशयों में से १८ अतिशय जन्म के होते हैं। दस केवल ज्ञान के होते हैं और १४ अतिशय देवकृत होते हैं यह देवकृत अतिशय भी केवलज्ञान होने पर होते हैं। **अतिशय**

ऐसी अद्भुत बात या अनोखी बात को कहते हैं जो साधारण मनुष्यों में न पाई जावे।

जन्म के दश अतिशय

अतिशय रूप सुगंध तन, नाहिं पसेव निहार।
प्रिय हित वचन अतुल्य बल, रुधिर श्वेत आकार॥
लक्षण सहसरु आठ तन, सम चतुष्क संठान।
वज्र वृषभ नाराच जुत, ये जन्मत दश जान॥

(१) अत्यंत सुन्दर शरीर (२) अति सुगन्धमय शरीर (३) पसेव रहित शरीर (४) मलमूत्र रहित शरीर (५) प्यारे हित के वचन बोलना (६) अतुल्य बल (७) दूध के समान सफेद रुधिर (८) शरीर में १००८ लक्षण (९) समचतुरस्र संस्थान (सुडौल सुन्दर आकार) (१०) वज्र वृषभ-नाराच संहनन (हाड़ वेष्टन और कीलों का वज्रमय होना)

ये दश अतिशय तीर्थंकर भगवान् के जन्म से होते हैं।

केवलज्ञान के दश अतिशय

योजन शत इक में सुभिख, गगन गमन मुखचार।
नहिं अदया उपसर्ग नहिं, नाहीं कवलाहार॥
सब विद्या ईश्वर पनो, नाहिं बढ़ें नख केश।
अनिमिष दृग छाया रहित, दश केवल के वेश॥

(१) एक सौ योजन में सुभिक्षता अर्थात् जिस स्थान में केवली हों उनमें चारों तरफ सौ सौ योजन या ४०० कोस में सुकाल होगा। (२) पृथ्वी से अधर आकाश में गमन। (३) चारों ओर मुख का दिखाई देना। (४) हिंसा का अभाव। (५) उपसर्ग का न होना। (६) भगवान् के कवलाहार (ग्रास रूप आहार) न होना अर्थात् भोजन नहीं करना। (७) समस्त विद्याओं का स्वामीपना। (८) नाखून और बालों का न बढ़ना। (९) नेत्रों की पलकें न झपकना (१०) उनके शरीर की छाया का न पड़ना।

यह दश अतिशय केवलज्ञान होने के समय तीर्थंकर तथा अन्य सर्व केवली अरहंतों के प्रगट होते हैं।

देव कृत चौदह अतिशय

दोहा

देव रचित हैं चार दश, अर्द्ध मागधी भाष।
आपस मांही मित्रता, निर्मल दिश आकाश॥
होत फूल फल ऋतु सबै, पृथ्वी कांच समान।
चरण कमल तल कमल व्है, नभतें जय जय बान॥
मंद सुगंध बयार पुनि, गंधोदक की वृष्टि।
भूमि विषै कंटक नहिं, हर्ष मयी सब सृष्टि॥

धर्म चक्र आगे रहे, पुनि वसु मंगल सार।
अतिशय श्री अरहंत के, ये चौतीस प्रकार॥

अरहंत भगवान् के देवकृत यह चौदह अतिशय होते हैं।

(१) अर्द्ध मागधी (जिसको सब जीव समझ लेवें) भाषा का होना।
(२) समस्त जीवों में आपस में मित्रता होना।
(३) दिशाओं का निर्मल होना।
(४) आकाश का निर्मल होना।
(५) सब ऋतुओं के फल फूल तथा धान्य आदि का एक ही समय फलना।
(६) एक योजन तक की पृथ्वी का शीशे की तरह निर्मल होना।
(७) भगवान् के चरण कमलों के नीचे सोने के कमलों का रचना।
(८) आकाश में जय जय होना।
(९) मंद सुगन्धित पवन का चलना।
(१०) सुगंधमय जल की वृष्टि होना।
(११) भूमि का कंटक रहित होना।
(१२) सारी सृष्टि का आनन्दमय होना।

(१३) भगवान् के आगे धर्मचक्र का चलना।

(१४) छत्र, चमर, झारी, कलश, पंखा, दर्पण, स्वस्तिक, ध्वजा, इन अष्ट मंगल द्रव्य का होना।

इस प्रकार दश जन्म के, दश केवलज्ञान के और १४ देवकृत अतिशय मिल कर अरहंत के कुल ३४ अतिशय होते है।

अष्ट प्रातिहार्य

दोहा

तरु अशोक के निकट में, सिंहासन छवि दार।
तीन छत्र सिर पर लसें, भामंडल पिछवार ॥ १ ॥
दिव्य धुनि मुख तें खिरें, पुष्प वृष्टि सुर होय।
ढोरें चौंसठ चमर यक्ष, बाजें दुन्दुभि जोय ॥ २ ॥

अर्थात १—अशोक वृक्ष का होना

२—उसके पास में ही छविदार सिंहासन का होना।

३—भगवान् के सिर पर तीन छत्रों का होना।

४—भगवान् की छवि का भामण्डल बन जाना।

५—दिव्यध्वनि का होना अर्थात् भगवान की अक्षर रहित सबके समझ में आने वाली अनुपम वाणी का खिरना।

६—देवों का फूलों की वृष्टि करना।

७—यक्ष जाति के देवों का भगवान् पर चंवर ढोरना।
८—दुन्दुभि बाजों का बजना। ये आठ प्रातिहार्य हैं।

अनंत चतुष्टय

दोहा

ज्ञान अनन्त अनन्त सुख, दर्श अनंत प्रमाण।
बल अनन्त अरहन्त सो, इष्ट देव पहिचान ॥१॥

भगवान् के अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त दर्शन और अनन्त बल होता है। इन्हें अनन्त चतुष्टय कहा है। जिसमें यह अनन्त चतुष्टय पाये जाते हैं, वह इष्टदेव कहलाते हैं। यह सब अरहंतों के होते हैं चाहे तीर्थंकर हों या अन्य।

३४ अतिशय, ८ प्रातिहार्य और ४ अनन्त चतुष्टय यह सब मिलकर अरहन्त भगवान् के कुल ४६ गुण होते हैं।

नोट—अरहन्त में नीचे लिखे १८ दोष नहीं पाये जाते।

दोहा

जन्म जरा तृषा क्षुधा, विस्मय आरत खेद
रोग शोक मद मोह भय, निद्रा चिन्ता स्वेद ॥१॥

राग द्वेष और मरन युत, ये अष्टादश दोष।
नाहिं होत अरहन्त के, सो छविलायक मोष ॥२॥

(१) जन्म (२) जरा (बुढ़ापा) (३) तृषा (प्यास) (४) क्षुधा (भूख) (५) विस्मय (आश्चर्य) (६) आरत (पीड़ा) (७) खेद (दुख) (८) रोग (६) शोक (१०) मद (११) मोह (१२) भय (१३) निद्रा (१४) चिन्ता (१५) स्वेद (पसीना) (१६) राग (१७) द्वेष (१८) मरण

नोट—इस पाठ में ऊपर लिखे ४६ गुण जिनमें पाये जावे और जो १८ दोषों से रहित हैं वही सच्चे देव अर्थात अरहन्त कहलाते हैं। इन्हीं को जीवन मुक्त या साकार परमात्मा समझना चाहिये।

इन्हीं से धर्म का उपदेश मिलता है। जैन मंदिर में इन्हीं की प्रतिमायें विराजमान होती हैं। यह सर्व कथन पूर्ण रूप से तीर्थंकरों के लिये समझना चाहिये। सामान्य केवलियों में आत्मा के अंतरंग के गुण समान हैं बाहरी बातों में कुछ अन्तर होता है, क्योंकि तीर्थंकर अधिक पुण्यवान होते हैं।

प्रश्नावली

१ परमेष्टी किसे कहते हैं? और ये कितने होते हैं? नाम बताओ।

२ अरहंत किन्हें कहते हैं ? और इनमें कितने गुण होते हैं ? नाम सहित बताओ।

३ अतिशय से तुम क्या समझते हो ? बताओ कुल अतिशय कितने होते हैं ?

४ जब भगवान् का जन्म होता है बताओ उस समय कौन से अतिशय प्रगट होते हैं। वज्रवृषभनाराचसंहनन का क्या तात्पर्य है ?

५ (अ) केवलज्ञान के दश अतिशय कौन से हैं ?
(आ) देवकृत अतिशय कितने होते हैं ? उसके नाम बताओ।

६ आठ प्रातिहार्य तथा चार अनंतचतुष्टयों के नाम लिखो। बताओ श्री ऋषभ भगवान और श्री वर्द्धमान स्वामी में एक से गुण थे या कुछ कम ज्यादा ?

७ अरहंत में कौन से अठारह दोष नहीं पाये जाते ?

पाठ १०
सिद्ध परमेष्ठी

तुम पढ़ चुके हो कि कर्म आठ होते हैं। इन्हीं कर्मों के कारण जीवों को संसार में घूमना और दुख पाना पड़ता है। जो जीव इन कर्मों में से जब ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्मों का तपश्चरण

द्वारा नाश कर देते हैं, अरहन्त परमात्मा हो जाते हैं। वे ही अरहन्त जब शेष आयु,नाम,गोत्र और वेदनीय इन चार अघातिया कर्मों का भी नाश कर देते हैं,तो वे शरीर और संसार के बन्धनों से सदैव के लिये छूट जाते हैं। और तीन लोक के शिखर पर सिद्धालय में विराजमान होजाते हैं। उन्हें सिद्ध भगवान् या मुक्त जीव कहते है। इन्हीं का नाम निराकार परमात्मा है।

याद रक्खो—सिद्ध उन्हें कहते है जो आठों कर्मों का नाश करके संसार के बन्धन से सदैव के लिये मुक्त हो गये हैं, अर्थात् जो लौट कर फिर कभी संसार में नहीं आवेंगे। सिद्ध भगवान में नीचे लिखे मुख्य गुण होते है।

सोरठा

समकित दर्शन ज्ञान, अगुरु लघु अवगाहना।
सूक्ष्म वीरजवान, निराबाध गुण सिद्ध के॥

(१) क्षायिक सम्यक्त्व (२) अनन्त दर्शन (३)अनन्त ज्ञान (४) अगुरु लघुत्व (छोटे बड़े पन का अभाव) (५) अवगाहनत्व (जहाँ एक सिद्ध है वहां अन्य सिद्धों को भी जगह मिल जाती है) (६) सूक्ष्मत्व (इन्द्रियों से जाने नहीं जा सकते) (७) अनन्त वीर्य (८) अव्याबाधत्व (कोई बाधा नहीं)।

प्रश्नावली

१ सिद्ध किन्हें कहते हैं? अरहंत में और सिद्ध में क्या अंतर है।
२ बताओ दूसरे परमेष्टी कौन हैं और वो कहां रहते हैं? बताओ वह वहाँ से लौटकर आ सकते हैं या नहीं?
३ निराकार से तुम क्या समझते हो? बताओ सिद्ध भगवान् निराकार हैं या नहीं?
४ सिद्ध परमेष्टी में कितने गुण होते हैं? और कौन से? नाम बताओ। सूक्ष्मत्व और अव्याबाधत्व का अर्थ लिखो।

पाठ ११
आचार्य परमेष्टी

आचार्य उन्हें कहते हैं जो आप पांचों आचारों का पालन करते हैं, और दूसरे मुनियों से उनका पालन कराते हैं तथा जो दीक्षा और शिक्षा देते हैं। आचार्य मुनियों के संघ के अधिपति होते हैं। उनमें नीचे लिखे हुए ३६ गुण होते हैं।

दोहा—द्वादशतप दशधर्म युत, पालें पंचाचार
षट् आवश्यक त्रिगुप्तिगुण, आचारज पद सार

अर्थात् १२ तप, १०.धर्म, ५ आचार, ६ आवश्यक गुण और ३ गुप्ति यह कुल ३६ गुण होते हैं।

बारह तप

दोहा-अनशन ऊनोदर करें, व्रत संख्या रस छोर।
विविक्त शयन आसन धरें, काय कलेश सुठोर ॥
प्रायश्चित धर विनय युत, वैयावृत स्वाध्याय।
पुनि उत्सर्ग विचार के, धरें ध्यान मन लाय ॥

१-अनशन—सर्व प्रकार के भोजन का त्याग कर उपवास करना।

२-ऊनोदर—भूख से कम खाना।

३-व्रतपरिसंख्यान—भोजन के लिए जाते हुए आखड़ी लेना और किसी से न कहना। आखड़ी पूरी न हो तो उपवास करना।

४-रसपरित्याग—छहों रसों का या उन में से एक दो का त्याग करना। रस छह हैं:-दूध, घी, दही, मीठा, तेल, नमक।

५-विविक्त शय्यासन—एकान्त स्थान में सोना बैठना।

६-कायक्लेश—शरीर का सुखियापन मेटने के लिए कठिन तप करना।

७–प्रायश्चित–लगे हुये दोषों का दण्ड लेना।

८–विनय–सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय तथा रत्नत्रय धारकों की विनय करना।

९–वैयावृत—रोगी या वृद्ध मुनियों की सेवा करना।

१०–स्वाध्याय–शास्त्र पढ़ना।

११—व्युत्सर्ग—शरीर से ममत्व हटाना।

१२—ध्यान—आत्म स्वरूप का ध्यान करना। इनमें से पहिले ६ **बाह्यतप** (बाहर के तप कहलाते है) और पीछे के ६ **अन्तरंग तप** कहलाते है।

दश धर्म

दोहा–उत्तम छमा मार्दव आर्जव, सत्य वचन चित पाग।
संजम तप त्यागी सरब, आकिंचन तिय त्याग॥

१—उत्तमक्षमा–पीड़ित किये जाने पर भी अपने में सामर्थ होते हुये क्रोध नहीं करना।

२—उत्तम मार्दव–बिल्कुल मान न करना।

३—उत्तम आर्जव–बिलकुल कपट न करना।

४-उत्तम सत्य—शास्त्रानुसार सच बोलना।

५-उत्तम शौच—सन्तोष रखकर लोभ न करना, अपने अन्तःकरण को शुद्ध रखना।

६-उत्तम संयम—छह काय के जीवों की दया पालना और पांचों इन्द्रिय और मन को वश में रखना।

७-उत्तम तप—बारह प्रकार का तप करना।

८-उत्तम त्याग—चार प्रकार का दान देना तथा राग द्वेष आदि का त्याग करना।

९-उत्तम आकिंचन—परिग्रह का त्याग करना।

१०-उत्तम ब्रह्मचर्य—स्त्री मात्र का त्याग करना।

छह आवश्यक

दोहा—समता धर वंदन करैं, नाना थुति बनाय।
प्रतिक्रमण स्वाध्याययुत, कायोत्सर्ग लगाय॥

१-समता—समस्त जीवों से समता भाव रखना तथा सामायिक करना।

२-वन्दना—हाथ जोड़कर मस्तक से लगा जिनेन्द्र देव को नमस्कार करना।

३-स्तुति—पंच परमेष्ठी की स्तुति करना।

४-प्रतिक्रमण—लगे हुये दोषों का पश्चाताप करना।

५-स्वाध्याय—शास्त्रों का पढ़ना।

६-कायोत्सर्ग—खड़े होकर ध्यान लगाना तथा शरीर से ममता छोड़ना।

पंचाचार और तीन गुप्ति

दोहा—दर्शनज्ञान चरित्र तप, वीरज पंचाचार।
गोपें मन बच काय को, गिन छत्तीस गुण सार॥

१-दर्शनाचार—सम्यग्दर्शन को निर्मल पालना।

२-ज्ञानाचार—सम्यग्ज्ञान की वृद्धि करना।

३-चारित्राचार—सम्यक्चारित्र को विशुद्धता से पालना।

४-तपाचार—तप की वृद्धि करना।

५-वीर्याचार—आत्मबल को प्रकट करना।

ये पांच आचार कहलाते हैं।

गुप्ति का अर्थ है वश में करना। गुप्ति तीन होती हैः—

१-मनोगुप्ति—मन को वश में करना।

२-बचन गुप्ति—बचन को वश में करना।

३-कायगुप्ति—शरीर को वश में करना।

इस प्रकार सब मिलकर आचार्य के ३६ गुण होते हैं।

प्रश्नावली

१ आचार्य किसे कहते हैं? आचार्य उपाध्यायों से बड़े हैं या छोटे?

२ आचार्य में कितने गुण होते है और कौन २ से? नाम बताओ?

३ (क) तप कितने होते हैं और बताओ इनको कौन धारण करता है?

(ख) बाह्य तप और अंतरंग तप से तुम क्या समझते हो वह कौन से हैं? काय क्लेश और प्रायश्चित का क्या अर्थ है?

४ (क) गुप्ति किसे कहते हैं?

(ख) आचार और गुप्ति को कौन पालते हैं तथा ये कितने प्रकार के होते है नाम लिखो।

५ दश धर्म तथा षट् आवश्यकों के छंद बताओ।

पाठ १२

उपाध्याय परमेष्ठी

जो मुनि स्वयं पढ़ते हैं, तथा शिष्यों को पढ़ाते हैं, वे उपाध्याय कहलाते हैं। वे ११ अंग और चौदह पूर्व के पाठी होते हैं। ११ अंग तथा १४ पूर्वों का ज्ञान होना ही इनके २५ गुण हैं।

दोहा—चौदह पूरब को धरें, ग्यारह अंग सुजान।
उपाध्याय पच्चीस गुण, पढ़े पढ़ावे ज्ञान॥

११ अंगों के नाम

प्रथमहि आचारङ्ग गनि, दूजा सूत्रकृतांग।
ठाण अंग तीजो सुभग, चौथा समवायांग॥
व्याख्या पएणति पांचमो, ज्ञातृकथा षट आन।
पुनि उपासका-ध्ययन है, अन्तःकृत दश ठान॥
अनुत्तरण उत्पाद दश, सूत्र विपाक पिछान।
बहुरि प्रश्न व्याकरणयुत, ग्यारह अंग प्रमान॥

(१) आचारांग (२) सूत्र कृतांग (३) स्थानांग (४) समवायांग (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति (६) ज्ञातृकथांग (७) उपासकाध्ययनांग (८) अन्तःकृतदशांग (९) अनुत्तरोत्पादकदशांग (१०) प्रश्नव्याकरणांग (११) विपाक सूत्रांग ये ग्यारह अङ्ग हैं।

१४ पूर्व

दोहा—उत्पाद पूर्व अग्रायणी, तीनों वीरजवाद।
अस्ति नास्ति परवाद पुनि, पंचम ज्ञान प्रवाद॥
छटा कर्म प्रवाद है, सत प्रवाद पहिचान।
अष्टम आत्म-प्रवाद पुनि, नवमों प्रत्याख्यान॥
विद्यानुवाद पूरव दशम, पूर्व कल्याण महंत।
प्राणवाद क्रिरिया बहुल, लोक बिन्दु है अंत॥

(१) उत्पादपूर्व (२) अग्रायणी पूर्व (३) वीर्यानुवाद-पूर्व (४) अस्ति नास्ति प्रवाद पूर्व (५) ज्ञान प्रवाद पूर्व (६)कर्म प्रवाद पूर्व (७) सत्यप्रवाद पूर्व (८) आत्मप्रवाद-पूर्व (९) प्रत्याख्यान पूर्व (१०) विद्यानुवाद पूर्व (११) कल्याणवाद पूर्व (१२) प्राणानुवाद पूर्व (१३) क्रिया-विशाल पूर्व (१४) लोकबिन्दु पूर्व।

ये चौदह पूर्व हैं।

तीर्थंकर के उपदेश को गणधर सुनकर के ११ अंग १४ पूर्व में या द्वादशांग में गूंथते हैं। इनके ज्ञाता उपाध्याय परमेष्टी होते हैं।

प्रश्नावली

१ उपाध्याय परमेष्टी किन्हें कहते हैं?
२ चौथे परमेष्टी कितने गुण के धारक होते हैं?
३ पूर्व कितने होते हैं? छंद लिखो।
४ अंग कितने होते हैं? नाम सहित बताओ।

पाठ १३

साधु परमेष्ठी

जो मोक्ष पुरुषार्थ का साधन करते हैं, उन्हें साधु कहते हैं। उनके पास कुछ भी परिग्रह नहीं होता और न

वह कोई आरंभ करते हैं। वे सदा ज्ञान ध्यान में लवलीन रहते है।

उनके ५ महाव्रत, ५ समिति, ५ इन्द्रियविजय, ६ आवश्यक और ७ अन्य शेष गुण कुल २८ मूल गुण होते हैं। इन्हीं साधुओं में से योग्यतानुसार आचार्य व उपाध्याय पद होते हैं।

पंच महाव्रत

दोहा—हिंसा अनृत तस्करी, अब्रह्म परिग्रह पाय।
मन बचन तन तें त्यागवो, पंच महाव्रत थाय॥

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पांच पापों का मन, बचन, काय से सर्वथा त्याग करने का नाम ही पंचमहाव्रत है।

१-अहिंसा महाव्रत—मन, वचन, काय से सर्वथा हिंसा का त्याग करना।

२-सत्य महाव्रत—मन, वचन, काय से सर्वथा असत्य का त्याग करना।

३-अचौर्य महाव्रत—मन, वचन, काय से सर्वथा चोरी का त्याग करना।

४-ब्रह्मचर्य महाव्रत—मन, वचन, काय से सर्वथा मैथुन का त्याग करना।

५-परिग्रह त्याग महाव्रत—२४ प्रकार के परिग्रह का मन वचन काय से सर्वथा त्याग करना।

यह २४ प्रकार का परिग्रह इस भांति जानना चाहिये।

१४-अंतरंगपरिग्रह—मिथ्यादर्शन, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद।

१०-वाह्य परिग्रह—

क्षेत्र, मकान, धन (गाय भैंस आदि) धान्य, हिरण्य (चांदी) सुवर्ण (सोना), दासी, दास, कपड़े बर्तन।

पंच समिति

दोहा—ईर्या भाषा एषणा, पुनिक्षेपण आदान।
प्रतिष्ठापना युत क्रिया, पांचों समिति विधान।

१-ईर्या समिति—आलस्य रहित चार हाथ आगे पृथ्वी देखकर दिन में (प्राशुक) भूमि पर चलना।

२-भाषा समिति—हित मित वचन बोलना।

३-एषणा समिति—दिन में एक बार निर्दोष शुद्ध आहार लेना।

४-आदान निक्षेपण समिति—अपने पास के शास्त्र, पीछी, कमंडल, आदि को भूमि देखकर सावधानी से धरना उठावना।

५-प्रतिष्ठापन समिति—जीव जन्तु रहित साफ (प्राशुक) भूमि देखकर मलमूत्रादि डालना, ये पांच समिति हैं ।

दोहा—सपरस रसना नासिका, नयन श्रोत का रोध ।
    पट आवश मंजन तजन, शयन भूमि का शोध ॥
    वस्त्रत्याग कच लुञ्च अरु, लघु भोजन इक बार ।
    दांतन मुख में ना करें, ठाड़े लेहिं अहार ॥

१-स्पर्शन, २-रसना ३-घ्राण ४-चक्षु ५-कर्ण इन पांचों इन्द्रियों को वश में करना । इनके इष्ट अनिष्ट विषयों में राग द्वेष नहीं करना यह **इन्द्रिय विजय** कहलाता है ।

६—आवश्यक—समता, वन्दना, स्तुति, प्रतिक्रमण स्वाध्याय, और कायोत्सर्ग ये छह आवश्यक कहलाते हैं । यह तुम पहले पढ़ चुके हो इनका पालन साधु भी करते हैं ।

७—शेष गुण यह हैं—

१-स्नान का त्याग ।

२-स्वच्छ शुद्ध भूमि पर सोना ।

३-वस्त्र त्याग करना ।

४-बालों का लोच करना ।

५-दिन में एक बार थोड़ा भोजन करना ।

६-दन्तवन नहीं करना।

७-खड़े होकर आहार लेना।

इस प्रकार पांच महाव्रत, पांच समिति, पांच इन्द्रिय विजय, छः आवश्यक और सात शेष गुण मिला कर साधुओं के २८ मूल गुण होते है।

इन्हीं मूल गुणों का पालन करना आचार्य और उपाध्याय के लिये ज़रूरी है।

प्रश्नावली

१ साधु किन्हें कहते हैं? साधु और मुनि में क्या अंतर है?

२ साधु परमेष्टी में कितने मूल गुण होते हैं? जुदा २ गिनाओ।

३ महाव्रतों और अणुव्रतों में क्या भेद है और यह भी बताओ कि महाव्रत कौन पालते हैं और अणुव्रत कौन?

४ परिग्रह कितने प्रकार का होता है? नाम लिखो?

५ समिति, महाव्रत शेष गुण ये कितने होते है? नाम लिखो।

६ साधु, आचार्य, उपाध्याय इनको क्रम से लिख कर बताओ कि कौन सबसे बड़े हैं कौन छोटे?

पाठ १४

गुरु स्तवन

ते गुरु मेरे उर बसो, तारण तरण जहाज।

आप तिरें पर तारहीं, ऐसे श्री मुनिराज ॥तेगुरु॥ टेक

मोह महारिपु जीत के, छोड़ दियो घर बार।
होय दिगम्बर बन बसें, आतम शुद्ध विचार॥ १ ॥ ते०
रोग उरग बपुविलगिन्यो, भोग भुजंग समान।
कदली तरु संसार है, छांड्यो सब यह जान॥ २ ॥ ते०
रत्नत्रय निधि उर धरैं, अरु निर्ग्रन्थ त्रिकाल।
जीतें काम खबीस को, स्वामी परम दयाल॥३॥ ते०
धर्म धरैं दश लक्षणी, भावें भावना सार।
सहैं परीषह बीस द्वै, चारित्र रत्न भंडार॥४॥ ते०
जेठ तपै रवि आकरो, सूखे सरवर नीर।
शैल शिखर मुनि तप तपें, दाहें नगन शरीर॥५॥ ते०
पावस रयन डरावनी, बरसे जलधर धार।
तरु तले निवसैं साहसी, चाले झंझा बयार॥६॥ ते०
शीत पड़े रवि मद गले, दाहे सब बन राय।
ताल तरंगनि तट विषै, ठाड़े ध्यान लगाय॥७॥ ते०
इस विधि दुद्धर तप तपैं, तीनों काल मझार।
लागें सहज स्वरूप में, तन से ममता टार॥८॥ ते०
रङ्ग महल में सोवते, कोमल सेज बिछाय।
ते सोवें निशि भूमि में, पोढ़ें संवर काय॥९॥ ते०
गज चढ़ चलते गर्व से, सेना सज चतुरंग।
निरख निरख पग वे धरें, पालें करुणा अंग॥१०॥ ते०

पूरब भोग न चिंतवैं, आगम वांछा नाहिं।
चहुँगति के दुखसे डरें, सुगति लगी शिवमाहिं ॥११॥ ते०
वे गुरु चरण जहाँ धरें, जग में तीरथ होय।
सो रज मम मस्तक चढ़ो, "भूधर" मांगे सोय ॥१२॥ ते०

प्रश्नावली

१ गुरु स्तवन से तुम क्या समझते हो ? बताओ इसके बनाने वाले कौन हैं ?
२ वास्तविक गुरु कौन हैं ? और उनमें क्या २ विशेषतायें होनी परमावश्यक हैं ?
३ परीषह कितनी होती हैं और इनको कौन और किस लिए सहते हैं ?
४ संसार-सागर से तारने के लिए गुरु किसके समान होते हैं ?

पाठ १५

गृहस्थों के दैनिक षट्कर्म

गृहस्थ लोग पाप क्रियाओं का सर्वथा त्याग नहीं कर सकते। गृहस्थ में रहते हुए खाने पीने, धन कमाने, मकान बनाने, विवाह आदि करने के लिये अनेक प्रकार के आरम्भ करने पड़ते हैं, जिनको करते हुये भी हिंसादि

के दोष लग ही जाते हैं। इन्हीं के साथ दोषों को दूर करने, पुण्यबन्ध करने तथा अपनी आत्मोन्नति करने के लिये शास्त्रों में गृहस्थ के छह दैनिक कर्तव्य बतलाये गये हैं।

"देवपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां, षट् कर्माणि दिने दिने॥"

अर्थात्—नित्य प्रति जिनेन्द्र देव की पूजा करना, गुरु की भक्ति करना, स्वाध्याय करना, संयम का पालन करना, तप का अभ्यास करना और दान का देना, ये गृहस्थों के छह दैनिक कर्तव्य हैं।

(१)—**देवपूजा**—श्री अरहंत तथा सिद्ध भगवान् का पूजन करना। यदि अरहंत भगवान साक्षात् मिलें तो उनकी सेवा में जाकर अष्ट द्रव्य से भक्ति सहित पूजन करना चाहिये; अन्यथा उनकी वैसी ही ध्यानाकार शान्तिमय वीतराग प्रतिमा को विराजमान करके उसके द्वारा अरहंत भगवान् का पूजन करना चाहिये। हमारी आत्मा पर जैसा प्रभाव साक्षात् अरहंत के दर्शन व पूजन से पड़ता है वैसा ही प्रभाव उनकी ध्यानमय वीतराग प्रतिष्ठित प्रतिमा के दर्शन व पूजन से पड़ता है। प्रगट देखा जाता है कि जैसे चित्र देखने में आते हैं वैसे ही भाव देखने

वाले के चित्त में अवश्य पैदा होते हैं। मन्दिर में भगवान् की वीतराग शान्तिमय प्रतिमा के देखने से हृदय आप ही आप वैराग्य भावों से भर जाता है और उनके निर्मल गुण स्मरण हो जाते हैं। उससे भाव शुद्ध होते हैं। इसीलिये गृहस्थों को चाहिये कि वे नित्यप्रति अष्ट द्रव्य से या किसी एक द्रव्य से भगवान् का पूजन करें। प्रतिमा का स्थापन मात्र भावों को बदलने के लिये है, प्रतिमा से कुछ मांगने की न जरूरत है, न प्रतिमा इसलिये स्थापित ही की जाती है।

देव पूजा से पापों का क्षय और पुण्य का बंध होता है तथा मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती है। दर्शन तो प्रत्येक बालक-बालिका, स्त्री-पुरुष को नित्य करना चाहिये। पूजन यदि नित्य न हो सके तो कभी २ अवश्य करना चाहिये। जहाँ प्रतिमा या मन्दिर का समागम न हो वहाँ परोक्ष ध्यान करके स्तुति पढ़ लेनी चाहिये, तथा एक दो जाप और जप करके भोजन करना चाहिये।

(२) **गुरु भक्तिः**—गुरु शब्द का अर्थ यहां सच्चे धर्मगुरु अर्थात् मुनि महाराज से समझना चाहिये निर्ग्रन्थ गुरु की सेवा पूजा तथा संगति करना "गुरुभक्ति" कहलाती है। गुरु साक्षात् उपकार करने वाले होते हैं,

वे अपने उपदेश द्वारा गृहस्थों को सदा धर्म कार्य की प्रेरणा किया करते हैं। गुरु तारण तरण जहाज हैं। आप संसार रूपी समुद्र से पार होते हैं और दूसरे जीवों को भी पार उतारते हैं। इसलिये गृहस्थों को सदा भक्ति पूर्वक गुरु की उपासना तथा सेवा करनी चाहिये। यदि अपने स्थान में गुरु महाराज न हों तो उनका स्मरण करके मन पवित्र करना चाहिये। तथा धर्म के प्रचारक ऐलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी आदि हों तो उनकी सेवा संगति करके धर्म का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

(३) **स्वाध्याय**—तत्व बोधक जैन शास्त्र का विनय पूर्वक भक्ति सहित समझ २ कर पढ़ना और दूसरों को सुनाना चाहिये-यदि पढ़ना न आवे तो सुनना, व धर्म चर्चा करनी चाहिये। जिस २ तरह हो सके ज्ञान को बढ़ाना चाहिये। स्वाध्याय एक प्रकार का तप है। इससे बुद्धि का विकाश होता है। परिणाम उज्ज्वल होते हैं तथा अनेक गुणों की प्राप्ति होती है।

(४) **संयम**—पापों से बचने के लिये अपनी क्रियाओं का नियम बांधना चाहिये। पांचों इन्द्रियों और मन को वश में करने के लिये नित्य सवेरे ही २४ घंटे के लिये भोग उपभोग के पदार्थों को अपने काम के योग्य रखके

शेष का त्याग करना चाहिये, जैसे आज हम मीठा भोजन नहीं खायेंगे। सांसारिक गीत नहीं सुनेंगे। वस्त्र इतने काम में लेंगे इत्यादि। तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस इन छह प्रकार के जीवों की रक्षा का भाव रखना और व्यर्थ उनको कष्ट न देना चाहिये। इसलिये गृहस्थों के लिये ज़रूरी है कि वह नित्य प्रति संयम पालन का अभ्यास किया करें। संयम एक दुर्लभ वस्तु है। संयम का पालन केवल मनुष्य गति में ही हो सकता है। संयम के बिना मनुष्य जन्म निष्फल होता है। विद्यार्थियों को चाहिये वह भावना भावें कि उनके जीवन की एक घड़ी भी संयम के बिना न जावे। संयम पालने के लिये उचित है, कि हम बुरी आदतों को छोड़ें। अपना खान पान पहनावा आदि सादा रक्खें। फैशन के दास न बनें। चाय, सोडा, तम्बाकू, बीड़ी, चुरट, शराब आदि नशे की चीजें, मसालेदार चाट, खोमचे और बाज़ार की बनी हुई अशुद्ध मिठाई आदि का सेवन न भावों को बिगाड़ने वाले नाटक, सिनेमा, नाच, स्वांग, तमाशे न देखें तथा विकार पैदा करने वाले उपन्यास तथा कहानियां न पढ़ें।

(५) तप—से मतलब नित्य सवेरे व शाम एकांत में

बैठ कर सामायिक करने में है। आत्मध्यान की अग्नि में आत्मा को तपाना तप है। इससे कर्मों का नाश होता है। बड़ी शान्ति मिलती है। आत्म सुख का स्वाद आता है। आत्म बल की वृद्धि होती है। इसलिये सबेर शाम सामायिक अवश्य ही करना चाहिए।

(६) दान—अपने और पर के उपकार के लिए फल की इच्छा के बिना प्रेम भाव से धनादि का तथा स्वार्थ का त्याग करना दान कहलाता है। जो दान मुनियों, व्रती श्रावकों तथा अव्रती सम्यक्ती श्रेष्ठ पुरुषों को भक्ति सहित दिया जाता है, पात्र दान कहलाता है। और जो दान दीन दुखी, भूखे, अपाहज, विधवा, अनाथों को करुणाभाव से दिया जाता है, वह करुणादान कहलाता है।

दान चार प्रकार का है—१ आहार दान, २-औषधिदान, ३-ज्ञानदान, ४-अभयदान।

(क) आहार दान—मुनि, त्यागी, श्रावक, ब्रह्मचारी तथा लंगड़े लूले, भूखे, अनाथ विधवाओं को भोजन देना आहार दान है।

(ख) औषधिदान—रोगी स्त्री पुरुषों को औषधि देना उनकी सेवा टहल करना, औषधालय खोलना औषधि दान है।

(ग) **ज्ञानदान**—पुस्तकें बांटना पाठशालायें खोलना व्याख्यान देकर तथा शास्त्र सुनाकर धर्म और कर्तव्य का ज्ञान कराना, असमर्थ विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देना किसी को बिना कुछ लिए परोपकार बुद्धि से पढ़ा देना ज्ञान दान है ।

(घ) **अभयदान**—जीवों की रक्षा करना, धर्म साधन के लिये स्थान बनवाना, चोकी पहरा लगवा देना। धर्मात्मा पुरुषों को दुख और संकट से निकालना, दीन दुखी मनुष्य, पशु पक्षी भयभीत हों, जान से मारे जाते हों, अथवा सताये जाते हों, तो तन मन धन से प्राण बचाकर उनका भय दूर करना अभयदान है। मानवों व पशुओं के भय निवारण के लिए धर्मशाला व पशुशाला बनवाना अभयदान है ।

ऊपर लिखे चारों प्रकार के दानों में से कुछ न कुछ नित्यप्रति करना ग्रहस्थी का नित्यदैनिक दान कर्म है। सवेरे भोजन करने से पहले रोटी आधी रोटी दान के लिये निकाले बिना भोजन न करना चाहिये। ग्रहस्थियों को उचित है कि जो पैदा करें उसका चौथाई भाग, या छठा या आठवां या कम से कम दसवां भाग चार दान व धर्म की उन्नति के लिये निकालें, अपना जीवन सादगी

में बितावें, विवाह आदि में कम खर्च करें, परोपकार में अधिक धन लगावें।

प्रश्नावली

१ गृहस्थों के दैनिक कर्त्तव्य कितने होते हैं ? इनका पालन किस लिये करते हैं ?

२ दैनिक कर्म कितने हैं ? नाम बताओ। बताओ इनका नाम "दैनिक कर्म" क्यों रक्खा गया ?

३ देव पूजा से क्या अभिप्राय है ? यदि साक्षात भगवान् न मिलें तो उस अवस्था में क्या करना चाहिये ? देव पूजा से क्या लाभ है।

४ गुरु भक्ति व स्वाध्याय से तुम क्या समझते हो ? बताओ स्वाध्याय करने से क्या लाभ है।

५ संयम किसे कहते हैं ? और संयम रखना क्यों आवश्यक है ? संक्षेप में बताओ कि कौन से कामों का त्याग संयम माना जा सकता है।

६ बताओ गृहस्थी के दैनिक कर्मों में तप का क्या अर्थ है।

७ दान किसे कहते हैं और यह कितने प्रकार का है।

८ धर्मशाला बनवाना, पाठशाला खुलवाना तथा औषधालय खोलना और भिक्षुकों को भोजन देना—ये कौन से दान हैं।

पाठ १६

श्रावक के पांच अणुव्रत (अ)

हिंसा झूठ चोरी कुशील और परिग्रह इन पांच पापों का बुद्धिपूर्वक त्याग करना व्रत कहलाता है।

व्रत के दो भेद है महाव्रत और अणुव्रत। मन वचन काय से पांचों पापों का बुद्धिपूर्वक त्याग करना **महाव्रत** कहलाता है। इनका पालन मुनिराज ही कर सकते है।

इन पांच पापों का मोटे रूप मे एक देश त्याग करना **अणुव्रत** कहलाता है। अणुव्रत पांच है:—

(१) अहिंसाणुव्रत (२) सत्याणुव्रत (३) अचौर्याणुव्रत (४) ब्रह्मचर्याणुव्रत (५) परिग्रहपरिमाणअणुव्रत।

(क) अहिंसाणुव्रत—त्रस जीवों की संकल्पी हिंसा का त्याग करना अणुव्रत कहलाता है।

दूसरे भाग में तुम पढ़ चुके हो कि प्रमाद के वश होकर अपने या दूसरे के घात करने या दिल दुखाने को हिंसा कहते हैं यह हिंसा चार प्रकार की होती है।

(१) संकल्पी हिंसा-उसे कहते हैं जो इरादे से की जाय, अर्थात् मांस भक्षण के लिये धर्म के नाम पर बलि चढ़ाने के लिये, शिकार वगैरह का शौक तथा फैशन को पूरा करने के लिये जो जीवों का घात किया जाता है वह संकल्पी हिंसा है।

(२) उद्यमी हिंसा—खेती व्यापार करने वाले कल

कारखाने चलाने आदि रोजगार करने में जो हिंसा होती है उसको उद्यमी हिंसा कहते हैं।

(३) आरम्भी हिंसा—रसोई बनाना, अन्न को कूटना तथा बुहारी देना, मकान आदि बनाना उनको लीपना पोतना आदि में जो हिंसा होती है उसे आरंभी हिंसा कहते हैं।

(४) विरोधी हिंसा—शत्रु से अपने जान माल तथा अपने देश और धर्म की रक्षा करने के लिये युद्ध आदि करने में जो हिंसा होती है उसे विरोधी हिंसा कहते हैं।

इन चारों हिंसाओं में से श्रावक केवल संकल्पी हिंसा का त्याग कर सकता है, स्थावर जीवों की भी व्यर्थ हिंसा नहीं करता है। यद्यपि बाकी तीन हिंसाओं का सर्वथा त्याग श्रावक गृहस्थी में रहते हुवे नहीं कर सकता तो भी उसको सब कार्यों के करने में यत्न और नीति से ही व्यवहार करना चाहिये। इस व्रत का धारी श्रावक कषाय से किसी भी प्राणी को बन्धनमें नहीं डालता लाठी चाबुक आदि से नहीं मारता। किसी जीव के नाक, कान, पूँछ आदि अंगोपांग का छेदन नहीं करता है किसी जीव पर उसकी शक्ति से अधिक बोझा नहीं लादता। अपने आधीन पशुओं को भूखा प्यासा नहीं

रखता है। यदि वह ऐसा करता है तो उसके व्रत में दोष लगता है। अहिंसाव्रत के पालने के लिये पांच भावनाओं को विचारना जरूरी है (१) वचन सम्भाल कर बोलूं हिंसाकारी वचन न कहूं (२) मन में बुरा न विचारूं (३) ज़मीन पर देख कर चलूं (४) चीज़ को देख कर रक्खूं उठाऊँ (५) देख कर भोजन पान करूं।

(ख) सत्याणुव्रत—स्थूल झूठ बोलने का त्याग करना सत्याणुव्रत कहलाता है। इस व्रत का धारी स्थूल (मोटा) झूठ न तो आप बोलता है न दूसरों से बुलवाता है और ऐसा सच भी नहीं बोलता कि जिसके बोलने से किसी जीव का अथवा धर्म का घात होता है। इस व्रत का धारी झूठा उपदेश नहीं देता है। दूसरों के दोष प्रगट नहीं करता है। विश्वासघात नहीं करता है झूठी गवाही नहीं देता है। झूटे जाली कागज़ तमस्सुक रसीद आदि नहीं बनाता है, जाली हस्ताक्षर मोहर वगैरह नहीं बनाता है। इस व्रत के पालने के लिए भी पांच भावनायें विचारने योग्य है (१) क्रोध के वश में होकर झूठ न बोलूँ लोभ के आधीन होकर झूठ न कहूँ (३) भय के मारे असत्य न कह जाऊं (४) हास्य से झूठ न बोलूं (५) शास्त्र के विरुद्ध कोई बात नहीं कहू।

(ग) **अचौर्याणुव्रत**—प्रमाद के वश होकर दूसरों की बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण करने का त्याग करना अचौर्याणुव्रत है। इस व्रत का धारी किसी को गिरी पड़ी भूली या रक्खी हुई वस्तु को न तो आप लेता है और न उठा कर दूसरों को देता है।

इस व्रत का धारी दूसरों को चोरी के उपाय नहीं बताता। चोरी का माल नहीं लेता। राजा के महसूल आदि की (जैसे महसूल चुंगी रेलवे टिकट आदि) चोरी नहीं करता। बढ़िया चीजों में घटिया मिलाकर बढ़िया के मोल में नहीं बेचता। जैसे दूध में पानी मिलाकर, घी में चर्बी मिलाकर नहीं बेचता। नापने तोलने के गज बाट तराज़ू वगैरह हीनाधिक (कम या ज्यादा) नहीं रखता। यदि वह ऐसा करता है तो उसका व्रत दूषित हो जाता है। इस व्रत के पालन के लिये ५ भावनायें विचारना चाहियें। (१) जहां किसी का माल मता पड़ा हो वहाँ बिना आज्ञा के न ठहरूं (२) उजड़े हुए घर में ठहरूं जहां किसी की मिलकियत न हो (३) जहाँ कोई मना करे ऐसी जगह न बैठूँ न ठहरूं (४) भोजन शुद्ध करूं। छिप करके न करने योग्य भोजन न करूं (५) धार्मिक बात के लिये अपना मालिकपन मान करके कभी दूसरे धर्मात्माओं से झगड़ा न करूं।

(घ) **ब्रह्मचर्याणुव्रत**—अपनी विवाहिता स्त्रियों के सिवाय अन्य स्त्रियों से काम सेवन का त्याग करना ब्रह्म-चर्याणुव्रत है। इस व्रत का धारी अपनी स्त्री को छोड़ कर बाकी स्त्रियों को अपनी पुत्री और बहन के समान समझता है। कभी किसी को बुरी निगाह से नहीं देखता। वह अपने आधीन कुटुम्बीजनों के सिवाय दूसरों के रिश्ते नाते नहीं कराता। वेश्या तथा व्यभिचारिणी (बदचलन) स्त्रियों की संगति नहीं करता और न उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध रखता है। काम के नियत अंगों को छोड़कर और अंगों में कुचेष्टायें नहीं करता। अपनी स्त्री से भी काम सेवन की अधिक लालसा नहीं रखता है। यदि वह ऐसा करता है तो उसका व्रत मलिन होता है।

नोटः—स्त्री को विवाहित पुरुष में ही संतोष धारण करना चाहिये। अपने पति के सिवाय अन्य पुरुषों को पुत्र भाई तथा पिता के समान समझना चाहिये। ऐसे भाव करने से ही पतिव्रत धर्म रूप ब्रह्मचर्य का पालन होता है। स्त्रियों को भी उन सब कारणों से बचना चाहिए जो उनके शीलव्रत को दूषित करने वाले हों।

ब्रह्मचर्य रक्षा की पांच भावनायें जरूरी हैं।

(१) स्त्रियों में लुभाने वाली कथायें न करूँ।

(२) उनके मनोहर काय के अंग राग भाव से न देखूं।
(३) पूर्व में भोगे हुये भोगों को बार २ याद न करूँ।
(४) कामोद्दीपक रस व भोजन न करूँ जिससे मन आपे से बाहर हो जावे व स्वस्त्री परस्त्री का विचार जाता रहे।
(५) अपने शरीर की बनावट व शृँगार न करूं जो अपना मन काम भावों में फंसा रहे व दूसरों का मन बिगड़ जावे।

(ङ) **परिग्रह परिमाण अणुव्रत**—अपनी इच्छानुसार खेत मकान, रुपया पैसा, सोना चांदी, गौ, बैल, घोड़ा, अनाज, दासी दास, वस्त्र, बर्तन वगैरह वस्तुओं का इस प्रकार परिमाण कर लेना कि मैं जन्म भर के लिये इतना रखूंगा, बाकी सब का त्याग कर देना परिग्रह परिमाण अणुव्रत है। इस व्रत का धारी अपने किये हुये परिमाण का उल्लंघन नहीं करता। किन्तु जितना परिग्रह उसने रखा हुआ है, उसमें ही संतुष्ट रह अधिक तृष्णा नहीं करता है। जब प्रतिज्ञा पूर्ण हो जाती है, तो सन्तोष से अपना जीवन धर्म साधन व परोपकार में बिताता है इस व्रत की रक्षा के लिये भी पांच भावनायें भावनी चाहियें।

(१) मैं स्पर्श इन्द्रिय के विषयों की लोलुपता न रक्खूँ।
(२) मैं रसना इन्द्रिय के भोगों में राग द्वेष न करूं जो मिले सन्तोष से भोग लूं।
(३) मैं नासिका इन्द्रिय के भोगों की चाह में दुखी न होऊं।
(४) मैं चक्षु इन्द्रिय के वश में होकर मनोहर रूपों के देखने में लालसा न करूँ।
(५) मैं कर्ण इन्द्रिय के वश में होकर मनोहर गान सुनने की अधिक उत्कंठा न करूं।
सन्तोष धारण किये बिना इस व्रत का पालन नहीं हो सकता है।

प्रश्नावली

१ व्रत किसे कहते हैं और व्रत के कितने भेद हैं?

२ अहिंसाणुव्रत किसे कहते हैं? बताओ हिंसा कितने प्रकार की है? क्या श्रावक सभी हिंसाओं का त्याग कर सकता है। बताओ अहिंसाणुव्रती कौनसी भावनाओं का चिन्तवन करता है?

३ सत्याणुव्रत तथा अचौर्याणुव्रत का धारी कौन २ से कामों को नहीं करेगा? एक चोर की प्राण रक्षा के लिए झूठी गवाही देना अच्छा है या बुरा?

४ ब्रह्मचर्याणुव्रत किसे कहते हैं? ब्रह्मचर्याणुव्रत के धारी के लिए कौन २ कार्य त्याज्य हैं बताओ इस व्रत का धारी वेश्या का नाच देखेगा या नहीं?

५ परिग्रह परिमाण का क्या अभिप्राय है ? परिग्रह परिमाण अणुव्रत का धारी कौनसी पांच भावनाओं का चिन्तवन करेगा ?

पाठ १७

श्रावक के व्रत (क) ३ गुणव्रत

गुणवृत उन्हें कहते हैं जो अणुव्रतों का उपकार करें और अणुव्रतों का मूल्य गुणन रूप बढ़ा देवें। गुणव्रत तीन होते हैं। १-दिग्वृत २-देशवृत ३-अनर्थदंडवृत

(क) दिग्वृत—लोभ आरम्भ को कम करने के लिये जन्म भर के लिये दसों दिशाओं में आने जाने की हद बांध लेना **दिग्वृत** कहलाता है। इस वृत का धारी इस प्रकार नियम करता है कि मैं जन्म पर्यन्त अमुक दिशा में, अमुक नदी पर्वत नगर से आगे नहीं जाऊंगा, जैसे किसी मनुष्य ने पूर्व में कलकत्ता, पश्चिम में सिंधु नदी, उत्तर में हिमालय पर्वत और दक्षिण में रासकुमारी से आगे नहीं जाने ही का नियम ले लिया तो यह नियम दिग्वृत कहलाता है।

इस वृत के धारी को चाहिये कि अपने किए नियम की मर्यादा को भली भांति याद रक्खें, और लोभादिक

के वश में होकर उसमें कोई घटा बढ़ी न करें ।

(ख) देशव्रत—घड़ी, घंटा, दिन पक्ष, महीना, वगैरह नियत समय तक दिग्व्रत में की हुई मर्यादा और भी घटा लेना देशव्रत है । जैसे दिग्व्रत में किसी ने यह नियम किया कि जन्म भर वह पूर्व दिशा में कलकत्ते से आगे नहीं जावेगा अब नियम करता है कि मैं चौमासे में अपने शहर से बाहर कहीं नहीं जाऊंगा । वह यह नियम और फिर किसी दिन कर लेवे कि आज मैं मंदिर में ही रहूंगा मंदिर से बाहर कहीं नहीं जाऊंगा, तो यह उसका देशव्रत समझना चाहिये। इस व्रत का धारी मर्यादा से बाहरक्षेत्र में न आप जाता है न किसी दूसरे को भेजता है, न वहां से कोई चीज़ वगैरह मंगवाता है, व भेजता है, न कोई पत्र व्यवहार करता है। धर्म कार्य के लिये मनाई नहीं है ।

याद रक्खो दिग्व्रत जीवन पर्यंत होता है और देश-व्रत कुछ नियत समय के लिये होता है ।

(ग) अनर्थदंडव्रत--बिना प्रयोजन ही जिन कार्यों में पाप का आरंभ हो, उन कार्यों का त्याग करना अनर्थ-दंडव्रत है ।

इस व्रत का धारी पांच प्रकार के अनर्थों से अपने को बचाता है:—

१—**पापोपदेश**—बिना प्रयोजन किसी को ऐसा कोई कार्य करने का उपदेश नहीं देता जिसमें पाप हो।

२—**हिंसादान**—हिंसा के औज़ार तलवार, पिस्तौल, फावड़ा, कुदाल पींजरा, चूहेदान आदि किसी दूसरे को यश के लिये मांगे नहीं देता।

३—**अपध्यान**—दूसरों का बुरा नहीं चाहता है। दूसरों की स्त्री पुत्र धन आजीविका आदि नष्ट होने की इच्छा नहीं करता है। दूसरे मनुष्यों तथा जानवरों की लड़ाई देखकर खुश नहीं होता, किसी की हार जीत में आनन्द नहीं मानता।

४—**दु:श्रुति**—परिणामों को बिगाड़ देने वाली कहानी किस्से, नाविल, स्वांग, तमाशे नाटक वगैरह की किताबें नहीं पढ़ता और नहीं सुनता।

५-**प्रमादचर्या**—बिना प्रयोजन जल नहीं खिडाता अग्नि नहीं जलाता, जमीन नहीं खोदता, वृक्ष, पत्ते फल, फूल आदिक नहीं तोड़ता। इस व्रत के पालन करने वाले को चाहिये कि अपनी जबान से कोई झूठ बचन न कहे शरीर से कोई कुचेष्टा न करे। व्यर्थ बकवास और फिजूल

की दौड़ धूप से बचता रहे और अपनी आवश्यकता से अधिक भोग उपभोग की सामग्री इकट्ठा न करे। यदि वह ऐसा करता है तो वह अपने नियम को मलीन करता है।

प्रश्नावली

१ गुणव्रत का लक्षण बतलाओ गुणव्रत कितने होते हैं नाम लिखो?

२ दिग्व्रत किसे कहते हैं? दिग्व्रत तथा देशव्रत में क्या भेद है? बताओ देशव्रत का धारी अपनी मर्यादा के बाहर किसी दूसरे मनुष्य को भिजवा कर अपना कार्य कर सकता है या नहीं? और क्यों?

३ अनर्थ दण्डव्रत किसे कहते हैं? वो कौनसे अनर्थ हैं जो इस व्रत के धारी के लिये त्यागने योग्य हैं? अनर्थ दंड व्रती अपना चहेदान अपने परिवार के मनुष्यों को मांगा देगा या नहीं? उत्तर कारण सहित लिखो।

४ बताओ कोई मनुष्य बिना अणुव्रत के धारण किये गुणव्रत धारण कर सकता है या नहीं? और गुणव्रत का धारी अणुव्रती है या नहीं? कारण सहित उत्तर दो?

पाठ १८

श्रावक के ४ शिक्षाव्रत

शिक्षाव्रत उन्हें कहते हैं कि जिनके धारण करने से मुनिव्रत पालन करने की शिक्षा मिले।

शिक्षाव्रत चार हैं–१ सामायिक २ प्रोषधोपवास, ३ भोगोपभोगपरिमाण, अतिथि संविभाग।

१–सामायिक शिक्षाव्रत—समस्त पाप क्रियाओं का त्याग तथा सब से राग द्वेष छोड़ समता भावों के साथ नियत समय तक आत्मध्यान करने का नाम सामायिक है।

सामायिक करने की विधि–सामायिक करने वाले को चाहिये कि शांत एकान्त स्थान में जाकर किसी प्राशुक शिला या भूमि पर पट्टा या आसन बिछाकर पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके खड़ा होवे: और दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक से लगाकर तीन बार शिरोनति करना (मस्तक झुकाकर नमोस्तु करना) और ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॐ नमः सिद्धेभ्यः इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये। फिर सीधे खड़े होकर दोनों हाथ सीधे छोड़ देने चाहियें। दोनों पांव की एड़ियों में चार अंगुल का और सामने अंगूठों में बारह अंगुल का अन्तर रहे इसी प्रकार मस्तक को भी सीधा और नाशाग्र दृष्टि रखना चाहिए और नौबार णमोकार मन्त्र का जाप करना चाहिए। इसके बाद उसी उत्तर या पूर्व में दोनों घुटने पृथ्वी पर लगाकर और दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक से लगाकर और मस्तक

भूमि से लगा कर अष्टांग नमस्कार करना चाहिये। फिर खड़े होकर काल आदि का प्रमाण कर लेना चाहिये कि मैं छः घड़ी, चार घड़ी या दो घड़ी तक या अमुक समय तक सामायिक करूंगा। उतने काल तक जो परिग्रह शरीर पर है उतना ही ग्रहण है। इत्यादि परिग्रह तथा काल क्षेत्रादि सम्बन्धी प्रतिज्ञा करनी चाहिये। पश्चात् उसी दशा में बिल्कुल सीधे दोनों हाथ जोड़ पहले की तरह खड़े होकर नौ या तीन बार णमोकार मन्त्र का जाप कर दोनों हाथ जोड़कर तीन आवर्त्त करें अर्थात् दोनों हाथों को अंजुली बनाकर बांई ओर से दाहिनी ओर को ले जाते हुए तीन चक्कर करें और फिर उस अंजुली को मस्तक से लगा कर मस्तक को झुकाना चाहिये। इस प्रकार शेष तीन दिशाओं में भी प्रत्येक में तीन मन्त्र जपकर तीन आवर्त्त और एक शिरोनति करना चाहिये। इस प्रकार चारों दिशाओं में भी सब मिलाकर बारह मंत्रों का जाप बारह आवर्त्त और चार शिरोनति हो जावेंगी पश्चात् जिस दिशा में पहले खड़े होकर नमस्कार किया था, उसी दिशा में चाहे तो मूर्ति-वत् स्थिर खड़े रह कर, अथवा पद्मासन या अर्ध-पद्मासन से स्थिर बैठकर सामायिक पाठ पढ़े। णमोकार

मंत्र का जाप दे। भगवत् की शांतिमय प्रतिमा तथा अपने आत्म स्वरूप का विचार करे दशलाक्षणी धर्म तथा बारह भावना का चिंतवन करें। इस व्रतधारी श्रावक को चाहिये कि वह सामायिक के काल में अपने मन वचन काय को इधर उधर चलायमान न होने दे। सामायिक को उत्साह के साथ करे। और सामायिक की विधि और पाठ को चित्त की चंचलता से भूल न जावे। सामायिक का काल समाप्त होने पर खड़े होकर पहले की तरह नौ बार णमोकार मंत्र का जप उसी दिशा में फिर अष्टांग नमस्कार करे। सामायिक प्रतिमा का धारी प्रातःकाल दो पहर और संध्याकाल में नितप्रति सामायिक नियम रूप से किया करता है।

नोट—अध्यापक को चाहिए कि सामायिक की विधि आवर्त्त शिरोनति अष्टांग नमस्कारादि करके छात्रों को भली भांति समझा देवें।

२-प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत—प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को समस्त आरंभ तथा विषय कषाय और सर्व प्रकार के आहार का त्याग करके १६ पहर तक धर्म ध्यान करना प्रोषधोपवास कहलाता है। एक बार भोजन करना "प्रोषध" कहलाता है और सर्वथा भोजन नहीं

करना 'उपवास' कहलाता है। दो प्रोषधोंके बीच में एक उपवास करना "प्रोषधोपवास" है। जैसे किसी पुरुष को अष्टमी का प्रोषधोपवास करना है, तो वह सप्तमी और नवमी को एक बार भोजन करे, और अष्टमी को भोजन का सर्वथा त्याग करे। उसे चाहिये कि प्रोषधोपवास के दिन पांचों पापों का, ग्रहस्थ के कारोबार का तथा शृङ्गार, अतर, तेल, फुलेल, साबुन, अंजन, मंजन आदि को और ताश चौसर गंजफा आदि खेलने का सर्वथा त्याग करे, और १६ पहर तक अपना समय पूजन, स्वाध्याय, सामायिक तथा धर्म-चर्चा में व्यतीत करे। यह विधि उत्तम प्रोषधोपवास की है। मध्यम प्रोषधोपवास १२ पहर का और जघन्य ८ पहर का होता है। इस व्रत के धारी श्रावक को चाहिये कि वे सब क्रियायें यत्नाचार के साथ करें और उपवास संबंधी उपयोगी बातों को न भूलें। यह भी ध्यान रहे कि उपवास को बेकार समझ कर न करे, हर्ष और आनन्द के साथ करे।

३-भोगोपभोग परिमाणव्रत—भोजन वस्त्रादि भोगोपभोग की वस्तुओं की मर्यादा करके बाकी सब का त्याग करना भोगोपभोग परिमाणव्रत है। जो वस्तुयें

एक बार ही भोगने में आवें उन्हें **भोग** कहते हैं जैसे रोटी पानी दूध मिठाई आदि । और जो चीजें बार बार भोगने में आवें वह **उपभोग** कहलाती हैं । जैसे वस्त्र चारपाई मकान सवारी आदि। जो वस्तुयें अभक्ष्य हैं अर्थात् सेवन करने योग्य नहीं हैं उनका जीवन पर्यंत त्याग करना चाहिये, और जो पदार्थ भक्ष्य हैं अर्थात् सेवन करने योग्य है उनका भी त्याग घड़ी, घंटा, दिन, महीना, वर्ष वगैरह की मर्यादा पूर्वक करना चाहिए ।

जन्म पर्यन्त त्याग को "यम" कहते हैं और थोड़े समय की मर्यादा को लिये हुए त्याग करना 'नियम' कहलाता है । इस व्रत के धारी को चाहिये कि नित प्रति सवेरे उठते ही वह इस प्रकार का नियम कर लेवे कि आज मैं भोगोपभोग की वस्तुयें इतनी रक्खूंगा और उनका इतनी बार और इस प्रकार सेवन करूंगा ।

इस व्रत का धारी विषयों को अच्छा नहीं समझता, पहले भोगे हुए भोगों को इच्छा रूप याद नहीं करता । आगामी भोगों की इच्छा नहीं करता । वर्तमान भोगों में भी अति लालसा नहीं रखता है । इस व्रत के धारी को निम्न लिखित १७ नियम विचारने चाहियें:—

(१) भोजन कै बार करूंगा ।

(२) छः रसों में से कौनसा छोड़ा।

(३) पान—भोजन के सिवाय पानी कितनी बार लूंगा।

(४) कुंमकुमादि विलेपन—आज तेल अतर फुलेल आदि लगाऊँगा या नहीं, यदि लगाऊँगा तो कौन से और कितनी बार।

(५) पुष्प-फूल सूंघूंगा या नहीं।

(६) ताम्बूल-पान खाऊंगा या नहीं, यदि खाऊंगा तो कितने टुकड़े और के बार।

(७) गाना बजाना-गाना सुनूंगा या नहीं।

(८) नृत्य करूंगा वा देखूंगा या नहीं।

(९) ब्रह्मचर्य पालूंगा या नहीं।

(१०) स्नान-स्नान के बार करूँगा।

(११) वस्त्र--कपड़े कितने काम में लूंगा।

(१२) आभरण--जेवर कौन २ से पहनूँगा।

(१३) आसन-बैठने के आसन कौन २ से रखूंगा।

(१४) शय्या-सोने के आसन कौन २ से रखूंगा।

(१५) बाहन-सवारी कौन २ रखूंगा ? या नहीं

(१६) सचित्त वस्तु-हरी आज कौन कौन खाऊंगा

(१७) वस्तु संख्या-कितनी सब वस्तुयें खाऊंगा या छोड़ूंगा

४—अतिथि संविभागव्रत—फल की इच्छा के बिना भक्ति और आदरके साथ धर्म बुद्धि से मुनि, त्यागी तथा अन्य धर्मात्मा पुरुषों को आहार, औषधि, ज्ञान और अभय चार प्रकार का दान देना अतिथि संविभाग व्रत कहलाता है। जो भिक्षा के लिये भ्रमण करते हैं, ऐसे साधुओं को **अतिथि** कहते हैं। अपने कुटुम्ब के लिए बनाए हुए भोजन में से भाग करके देना **संविभाग** है।

यदि मुनि त्यागी आदि दान के पात्र न मिलें तो किसी भी सहधर्मी भाई को आदर पूर्वक दान देवें अथवा करुणा बुद्धि से दीन दुखी अपाहज भिखारियों को भोजन वस्त्र औषध आदि यथाशक्ति दान देवें। श्रावकों को उचित है कि भोजन करने से पहिले कुछ न कुछ दान अवश्य ही करें। यदि और कोई दान न बन सके तो अपने भोजन में से कम से कम एक दो रोटी निकालकर दुखित भूखे मनुष्यों को तथा पशुओं को देदें। किसी का आदर सत्कार विनय करना, योग्य स्थान देना, कुशल पूछना, मीठे वचन बोलना एक प्रकार का बड़ा दान है। दान नाम त्याग का भी है। खोटे भाव, परनिन्दा, चुगली,

त्रिकथा, तथा कषायों और अन्याय के धन का त्याग करना भी महा दान है। बड़ के बीज की तरह भक्ति सहित पात्र को दिया हुआ थोड़ा भी दान महान फल को देता है, दानी को इस लोक में यश और परलोक में परम सुख की प्राप्ति होती है। दानी के शत्रु भी मित्र होजाते हैं। इस व्रतके धारी को चाहिये कि क्रोधित होकर अनादर से दान न देवे। छल कपट तथा ईर्षा भाव के साथ दान न देवे। दान देकर दुःखी न हो हर्ष भाव के साथ दान देवे, दान देकर गर्व न करे तथा दान के फल की इच्छा न करे।

प्रश्नावली

१ शिक्षाव्रत किसे कहते हैं? और ये कितने होते हैं?

२ सामायिक किस प्रकार करनी चाहिये, पूरी तरह से बताओ।

३ नीचे लिखे हुओं में क्या अन्तर है?
उपवास, प्रोपधोपवास, भोग और उपभोग यम और नियम।

४ भोगोपभोग परिमाण व्रत किसे कहते हैं? तथा इस व्रत के धारी के लिए विचारने योग्य कम से कम १० नियम लिखो। व दश भोग और दश उपभोग वस्तुओं के नाम लिखो।

५ शिक्षाव्रत के अंतिम भेद का लक्षण लिख कर बताओ कि तुम अतिथि से क्या समझते हो?

६ संविभाग का क्या अभिप्राय है और दान का क्या महत्व है?

पाठ १९

महावीर स्तुति

धन्य तुम महावीर भगवान।
लिया पुण्य अवतार, जगत् का करने को कल्याण॥धन्य०॥१
बिलबिलाट करते पशुकुल को, देख दयामय प्राण।
परम अहिंसामय सुधर्म की, डाली नींव महान॥ धन्य०॥२
ऊँच-नीच के भेद-भाव का, बढ़ा देख परिमाण।
सिखलाया सबको स्वाभाविक, समतातत्त्व प्रधान॥धन्य०॥३
मिला समवसृत में सुरनर-पशु, सबको सम सम्मान।
समता औ उदारता का यह, कैसा सुभग विधान॥धन्य०॥४
अन्धी श्रद्धा का ही जग में, देख राज्य बलवान।
कहा "न मानो बिना युक्ति के, कोई वचन प्रमाण"॥धन्य०॥५

प्रश्नावली

१ इस कविता में किन की स्तुति की गई है?
२ भगवान् महावीरके उपदेशों को एक संक्षिप्त निबन्धमें लिखो।

पाठ २०

भगवान पार्श्वनाथ

भगवान् महावीर चौबीस तीर्थंकरों में से अंतिम

तीर्थंकर थे। इनके पहले तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथजी हुये हैं। उनका बाल जीवन सत्य धर्म का पाठ सिखाने के लिये अनुपम है।

तीर्थंकर उस महापुरुष को कहते हैं जिसने इन्द्री और मन को जीत कर सर्वज्ञ पद पालिया हो और अपने दिव्य ज्ञान के द्वारा जो भटकते हुये जीवों को संसार रूपी महासागर से पार लगाने में सहायक हो। इस प्रकार सब ही तीर्थंकर लोक का सच्चा उपकार करने वाले महान शिक्षक थे। इनमें सबसे पहले ऋषभदेव हुए। उनके बाद बड़े २ लम्बे चौड़े समयों के बाद क्रमशः तेईस तीर्थंकर और हुये थे। इनमें से चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर जी की बाबत बालको! तुम पहले ही पढ़ चुके हो।

श्री महावीर स्वामी के निर्वाण से ढाई सौ वर्ष पहले श्री पार्श्वनाथ जी निर्वाण पधारे। इनके पिता राजा विश्वसेन बनारस में राज्य करते थे। इनकी माता महिपाल नगर के राजा की पुत्री थी। उनका नाम वामादेवी था। राजकुमार पार्श्वनाथ बड़े पुण्यशाली जीव थे। वह बचपन से ही गहन ज्ञान की बातें करते थे। लोग उनके चातुर्य को देखकर दंग रह जाते थे।

एक रोज राजकुमार पार्श्वनाथ बन विहार के लिये

निकले । सखा साथी उनके साथ थे । घूमते फिरते वे एक पेड़ के पास से निकले, जिस पर एक सन्यासी उल्टा लटक पंचाग्नि तप कर रहा था । यह उनके नाना थे । राजकुमार उनकी मूढ़ क्रिया देख हँसे । और साथियों से बोले देखो इस मूढ़ सन्यासी को ! यह जीव हत्या करके स्वर्ग के सुखों की अभिलाषा कर रहा है, जिस लक्कड़ को इसने सुलगा रक्खा है, उसमें नाग नागिनी हैं, यह भी इसको पता नहीं है ।

सन्यासी इस बात को सुनकर आग बबूला हो गया और बोला "हां हां तू बड़ा ज्ञानी है । छोटा मुंह बड़ी बातें कहते तुझे डर भी नहीं लगता, तिस पर भी तेरा नाना और सन्यासी । इस मेरी तपस्या को तू हत्या का काम बताता है" ।

राजकुमार पार्श्वनाथ ने सन्यासी की इन बातों का बुरा न माना बल्कि उन्होंने उत्तर में कहा साधु होकर क्रोध क्यों करते हो ? बुद्धि उम्र के साथ नहीं बिकी है । ज्ञान बिना कोई भी करनी काम की नहीं । तुम्हें अपनी तपस्या का बड़ा घमंड है तो ज़रा इस लक्कड़ को फाड़ कर देखो, दो निरपराध जीवों के प्राण जायेंगे । क्या यही धर्म कर्म है, सन्यासी बोला तो कुछ नहीं-पर लक्कड़

चीरने पर जुट पड़ा । उसने देखा सचमुच उस लकड़ के भीतर साँपों का एक जोड़ा है । वह दंग रह गया, परन्तु अपने बड़प्पन की डींग मारता ही रहा । वे युगल नाग शस्त्र से घायल हो गये, परन्तु उनके परिणामों में भगवान् पार्श्वनाथ के वचनों ने शांति उत्पन्न करदी थी वे ममताभाव से मर कर धरणेंद्र पद्मावती पैदा हुये । एक बार अयोध्या से एक दूत राजा विश्वसैन की सभा में आया । पार्श्व-नाथजी ने अयोध्या का हाल पूछा तो उसने ऋषभ आदि तीर्थंकरों का चरित्र सुनाया, सुनते ही प्रभु को ध्यान आया और वे वैराग्यवान हो गये । विना विवाह कराये ही तीस वर्ष की अवस्था में साधु दीक्षा ले ली, और घोर तप करने लगे ।

एक बार कमठ के जीव पूर्व जन्म के वैरी देव ने घोर उपद्रव किया । वृष्टि की, ओले बरसाये, सर्प लिपटाये, परन्तु भगवान सुमेरु पर्वतवत् ध्यानमें स्थिर रहे । युगल नाग के जीवों में से धरणेंद्र ने सर्प के रूप में छाया की, पद्मावती ने मस्तक पर उठा लिया । उपसर्ग दूर हुआ । भगवान् को केवल ज्ञान हुआ । केवलज्ञान होने के बाद भगवान् ने विहार करके धर्मोपदेश दिया । अनेक जीवों का उपकार किया । सौ वर्ष की आयु में हजारी बाग़ जिले

के सम्मेद शिखर पर्वत से मोक्ष पधारे । इसी कारण इस पर्वत को आज कल पार्श्वनाथ हिल (पहाड़) कहते हैं ।

प्रश्नावली

१ तीर्थंकर किसे कहते हैं ? बताओ भगवान् पार्श्वनाथ कौन से तीर्थंकर थे ?

२ सन्यासी कौन था ? और वह क्या कर रहा था ? भगवान पार्श्वनाथ को किस प्रकार ज्ञात हो गया कि लक्कड़ में नाग और नागिनी हैं ?

३ भगवान पार्श्वनाथ को वैराग्य क्यों हो गया था ? कमठ कौन था और उसने क्या उपद्रव किया और वह उपद्रव किस प्रकार दूर हुआ ?

४ क्या कारण था जो नाग और नागिनी घायल होकर मरने पर भी धरणेन्द्र और पद्मावती हो गये ?

५ भगवान पार्श्वनाथ कहाँ से मोक्ष गये थे ? और उस स्थान का क्या नाम पड़ गया था ?

पाठ २१

सती अंजना सुन्दरी

सती अंजना सुन्दरी महेन्द्रपुर के राजा महेन्द्र व रानी हृदयवेगा की परम प्यारी पुत्री थी । बालकपन में ही वह सब विद्याओं और कलाओं में निपुण हो गई थी । इसको

धर्मशास्त्र की शिक्षा भी पूर्ण रूप से दी गई थी। युवती होने पर माता पिता ने उसका सम्बन्ध आदित्यपुर के राजा प्रहलाद, रानी केतुमती के पुत्र पवनकुमार के साथ निश्चय कर दिया।

पवनकुमार ने अंजना के रूप गुण और शिक्षा की बड़ी प्रशंसा सुनी। उससे मिलने की इच्छा से वे एक रात्रि को अपने मित्र के साथ विमान द्वारा महेन्द्रपुर को रवाना हुए। जिस समय वे महेन्द्रपुर पहुँचे, अंजना सुन्दरी अपने महल के ऊपर सखियों के साथ बैठी हुई अपना मनोरंजन कर रही थी। पवनकुमार छिपकर उसकी गुप्त वार्ता सुनने लगे। ये सब सखियां अंजना के सम्बन्ध पर अपना २ विचार प्रगट कर रही थीं। अभाग्य से उसकी एक मूर्खा सखी ने पवनकुमार के सम्बन्ध पर कुछ असन्तोष प्रगट किया। अंजना लज्जावश चुप रही। पवनकुमार अपना अपमान समझ बड़े दुखी हुये। उनको अंजना से अरुचि होगई सीधे ही मित्र सहित अपने स्थान को लौट आये और अंजना के साथ विवाह न करने की दिल में ठान ली। यह सब समाचार किसी को मालूम नहीं हुये।

इधर दोनों राजाओं ने विवाह की तिथि निश्चित कर ली। विवाह की सब तय्यारियां होने लगीं। पवनकुमार

ने विवाह न करने की बहुतेरी हठ की, परन्तु माता पिता के आगे उनकी एक न चली । नियत तिथि पर उनका विवाह हो गया । यद्यपि पवनकुमार ने अपने माता पिता के कहने से अंजना से विवाह तो कर लिया परन्तु उनका चित्त उससे विरुद्ध ही रहा । अंजना जब उनके महल में गई तो उसे रूठ जाने का हाल मालूम हुआ, उसे बड़ा दुःख हुआ दिन रात वह उनको प्रसन्न करने के लिये अनेक प्रयत्न करती थी परन्तु उनका भ्रम दूर नहीं हुआ । पवनकुमार ने अंजना की ओर कभी प्रेम से नहीं देखा । इस प्रकार परम सती को उनका नाम रटते रटते २२ वर्ष हो गये । चिंता के कारण उसका शरीर सूख कर पिंजर हो गया ।

एक दिन जिस समय पवनकुमार अपने पिता की आज्ञानुसार लंका के राजा रावण को राजा वरुण के युद्ध में सहायता देने के लिये जाने को तैयार हुए, तो उन्होंने साक्षात् प्रेम की मूर्ति अञ्जना को दरवाजे पर पति दर्शन के लिये खड़ी देखी । कुमार ने उसकी विनय पर कुछ भी ध्यान न दिया । किन्तु अपमान भरे शब्दों से उसका और भी तिरस्कार कर दिया, और अपनी सेना लेकर युद्ध के लिये चलते बने । सुन्दरी के हृदय पर दुख

का पहाड़ टूट पड़ा। इस समय उसे परमात्मा के ध्यान के सिवाय और कोई सहारा न रहा।

चलते २ पवनकुमार मानसरोवर पर पहुँचे वहां उन्होंने अपना डेरा डाल दिया। रात्रि के समय जब टहल रहे थे, तो उन्होंने एक चकवी को चकवे के वियोग में रुदन करते हुये सुना। रुदन सुनकर विचारने लगे। देखो! इस चकवी को अपने प्रिय का एक रात्रि का वियोग होने से इस समय इतना कष्ट हो रहा है तो अंजना को २२ वर्ष के वियोग से न जाने कितना कष्ट हुआ होगा। प्रेम के आंसु कुमार की आंखों से गिरने लगे। तुरन्त ही गुप्त रीति से अपने मित्र सहित उसी रात्रि को विमान में बैठकर चुपके २ अञ्जना सुन्दरी के महल में पहुँचे। अञ्जना कुमार को देखकर फूली न समाई। पति की अनेक प्रकार से विनय व भक्ति करने लगी। कुमार ने अपने अपराधों की क्षमा मांगी। सारी रात महल में अञ्जना सुन्दरी के साथ बिताई।

सवेरा होते ही कुमार वहां से विदा होने लगे तो सुन्दरी ने कहा "जान पड़ता है मुझे गर्भ रह गया है कृपाकर आप मुझे अपनी कोई निशानी दे जावें जिससे मेरा अपमान न हो सके" तब कुमार अपनी अंगूठी सुन्दरी को देकर

चले गये। इधर उसके गर्भ के चिन्ह प्रतिदिन प्रगट होने लगे। उसकी सासु केतुमती ने यह देखकर उसे दूषित ठहराया। अञ्जना ने पवनकुमार की दी हुई अंगूठी को दिखाकर उसके भ्रम को बहुतेरा दूर करना चाहा, परंतु उसने एक न मानी, और अंजना सुन्दरी को उसकी सखी बसंतमाला सहित उसके पिता राजा महेन्द्र के यहां भेज दिया।

माता पिता ने भी अञ्जना को कलंकित समझ अपने नगर में घुसने नहीं दिया। इस तरह दुखी होकर बेचारी अञ्जना अपनी सखी बसंतमाला सहित विलाप करती भयानक बन में एक पर्वत की गुफा में पहुँची। वहाँ दैवयोग से उसे बड़े तपस्वी ज्ञानी मुनिराज के दर्शन हुए। अंजना ने बड़ी विनय से उन से अपनी इस आपत्ति का कारण पूछा। उत्तर में मुनिराज ने कहा "पुत्रि! तूने पहले जन्म में श्री जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमा को बावड़ी के जल में फिकवा कर बड़ा अनादर किया था, इससे तूने घोर पाप का बंध किया। उसी के कारण अब तुझे २२ वर्ष का पति वियोग और अनेक दुःख सहन करने पड़े। अब घबरा मत, धर्म साधन कर, तेरे कष्ट का अन्त होने वाला ही है। तेरे एक बड़ा परा-

क्रमी शूरवीर और धर्मात्मा पुत्र होगा"। यह मुनिराज तो वहां से विहार कर गये। रात्रि के समय जब अंजना बसंतमाला सहित गुफा में थी कि एक भयानक सिंह गुफा के द्वार पर आया। उसे देखकर अंजना बड़ी भयभीत हुई। परन्तु उसकी सखी बसन्तमाला ने बड़े साहस और पराक्रम से सिंहका सामना करके उसे वहाँ से भगा दिया। अब अंजना अपनी सखी सहित धर्म ध्यान पूर्वक उस गुफा में रहने लगी और श्रीमुनिसुव्रत भगवान् की प्रतिमा को विराजमान करके नित्य अभिषेक व पूजन करने लगी। वहाँ ही उसने परम प्रतापी जगत् प्रसिद्ध हनुमान को जन्म दिया।

एक दिन अञ्जना वन में अपने पति को याद कर फूट २ कर रो रही थी। उसी समय कारणवश हनुरुहद्वीप का राजा प्रतिसूर्य उधर से जा रहा था, अंजना का विलाप सुनकर अपना विमान उतारा और गुफा में गया। तुरन्त ही अपनी भानजी अंजना को पहिचान लिया और उसको हृदय से लगाया। हर प्रकार से शांति दे उसे अपने साथ अपने नगर को ले गया।

इधर जब पवनकुमार युद्ध में राजा वरुण को जीत कर अपने नगर आदित्यपुर में आये तो अंजना को वहां न पाकर बड़े दुखी हुये। जब पता चला कि वह अपने पिता

के यहां महेन्द्रपुर गई है तो वे वहां पहुँचे। परन्तु जब वहां भी परम सती अंजना के दर्शन न हुये, तो बनों में उसकी खोज में पागलों की तरह घूमने लगे। अब तो राजा महेन्द्र को भी यह हाल जानकर बड़ा दुख हुआ। दोनों ओर से पवनकुमार और अंजना की खोज में दूत भेजे गये। उनमें से एक दूत राजा प्रतिसूर्य के पास पहुँचा, और कुमार का सब हाल कह सुनाया। अंजना यह हाल सुन कर मूर्छित हो गई। राजा प्रतिसूर्य ने उसे समझाया, और आप आदित्यपुर आये। वहां से राजा प्रहलाद को लेकर कुमार की खोज में निकले। खोजते २ कुमार को एक भयानक बन में वृक्ष के नीचे बैठे देखा। कुमार की बड़ी शोचनीय दशा थी। कुमार को देखते ही राजा प्रहलाद के हृदय में प्रेम उमड़ आया, दौड़ कर जल्दी से उसे हृदय से लगा लिया। तथा अंजना के मिलने का व उसके प्रतापी पुत्र होने का सब समाचार कह सुनाया। कुमार यह समाचार सुनकर बहुत प्रसन्न हुए।

वहां से चल कर वे सब राजा प्रतिसूर्य के यहाँ हनुरुहद्वीप आए। पवनकुमार अपनी प्राणप्यारी अंजना से मिले। दोनों ने अपने अपने दुःख एक दूसरे को सुना कर दिल को शांत किया। और कुछ दिनों तक वहां ही

रहे। फिर वहां से आदित्यपुर में आकर दोनों पति पत्नी पुत्र सहित आनन्द से समय बिताने लगे। अन्त में अंजना ने आर्यिका बन बड़ी तपस्या की, और धर्म ध्यान पूर्वक मर कर स्वर्ग प्राप्त किया।

प्यारे बालकों! सती अंजना के चरित से हमें बड़ी शिक्षा मिलती है। देखो कर्मों की गति कैसी विचित्र है। महान् पुरुष भी कर्मों के फल से नहीं बच सकते। यह चरित्र बतलाता है कि जिन शासन की अविनय करने से बड़ा बुरा फल मिलता है। यह चरित्र मनुष्य के आलस्य को छुड़ा कर कर्मवीर बनाता है। यह चरित्र बताता है कि विपत्ति में साहसहीन न होकर धर्म पालन करना ही उचित है। यह चरित्र सिखाता है कि एक बार कार्य में सफलता न होने पर भी पुनः उद्योग करके उस कार्य में सफलता प्राप्त करना वीरों का धर्म है। कर्मों का खेल पतिव्रत की रक्षा और एक अबला के साहस और पराक्रम का सच्चा उदाहरण इस चरित्र में मिलता है।

प्रश्नावली

१ अंजना कौन थी? और किसकी पुत्री थी तथा इनका विवाह किनके साथ हुआ था?

२ पवनकुमार अंजना से क्यों अप्रसन्न हो गये थे ? तथा यह इनकी अप्रसन्नता कब तक बनी रही ?

३ पति की रुष्टावस्था में अंजना ने क्या किया ? और उसकी क्या हालत हुई ?

४ पवनकुमार मान सरोवर पर क्यों गये थे ? तथा किस प्रकार उनको अपनी २२ वर्ष की छोड़ी हुई पत्नी की सुध आ गई ?

५ सास ने अंजना को क्या कलंक लगाया तथा उसे कहाँ भिजवा दिया ? बन में अंजना ने क्या २ कष्ट उठाये तथा किस प्रकार अंजना अपने मामा के घर पहुँची ?

६ बताओ फिर किस प्रकार अंजना और पवनकुमार का संयोग हुआ ?

७ अंजना को अपने पति से २२ वर्ष का लम्बा वियोग क्यों सहना पड़ा था ?

८ अंजना की कहानी से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है ?

पाठ २२

तत्व और पदार्थ

जिनके जानने से हमें अपने आत्मा के सच्चे हित का ज्ञान हो सके, हम अपने आत्मा को पवित्र कर सकें उन बातों को, या **वस्तु के स्वभाव को "तत्व"** कहते हैं जिसमें तत्व पाया जावे उसी को **"पदार्थ"**

कहते है। आत्मा की उन्नति को समझने के लिये सात तत्त्वों का जानना आवश्यक है। वे सात तत्त्व ये हैं:—

(१) जीव (२) अजीव (३) आस्रव (४) बंध (५) संवर (६) निर्जरा (७) मोक्ष।

(१) **जीव**—उसे कहते हैं जिसमें चेतना अर्थात् देखने जानने की शक्ति पाई जावे। जीव प्राणों से जीते है। प्राण दो प्रकार के होते हैं **भावप्राण** और **द्रव्यप्राण**

भावप्राण—ज्ञान और दर्शन सुख वीर्यादि आत्मा के गुण हैं।

द्रव्यप्राण—दश होते हैं।

५ इन्द्रियें—स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण।

३ बल—मनोबल, बचनबल, कायबल।

२ आयु और श्वासोश्वास।

नोट—मुक्त जीवों में केवल भावप्राण, ज्ञान और दर्शन सुख वीर्य आदि ही पूर्ण रूप में पाये जाते हैं, पर संसारी जीवों में किन्हीं अंशों में ज्ञान दर्शन होते हुए द्रव्यप्राण भी पाये जाते हैं।

(२) **अजीव**—उसे कहते हैं जिसमें चेतना न पाई जावे। अजीव के पांच भेद हैं:—

पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल,(इनका स्वरूप तीसरे भाग में बताया जा चुका है।)

(३) **आस्रव**—राग द्वेष आदि भावों के कारण पुद्गल कर्मों का खिंचकर आत्मा की ओर आना आस्रव है। जैसे किसी नाव में छेद हो जाने पर पानी आने लगता है, वैसे ही आत्मा के शुभ अशुभ रूप भाव होने पर पुद्गल कर्म खिंचकर आत्मा की ओर आते हैं।

आत्मा के जिन भावों से कर्मों का आना होता है उन भावों को भावास्रव कहते हैं।

शुभ अशुभ पुद्गल कर्म परमाणुओं का आत्मा की ओर खिंचकर आना द्रव्यास्रव है।

मिथ्यात्व[१] अविरति,[२] कषाय[३] और योग[४] ही आस्रव के मुख्य कारण हैं।

(अ) **मिथ्यात्व**—राग द्वेष रहित अपनी शुद्ध परम पवित्र आत्मा के अनुभव में श्रद्धान करने का नाम सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व आत्मा का निज भाव है इस सम्यक्त्व के विपरीत अर्थात् उल्टे भाव को ही **मिथ्यात्व** कहते है। इस मिथ्यात्व भाव के कारण संसारी जीवों के अनेक प्रकार के संकल्प विकल्प हुआ करते हैं। यह मिथ्यात्व

ही जीव के शांति स्वभाव का नाश करता है और इसी से यह जीव के कर्म बंध का कारण है। मिथ्यात्व पांच प्रकार का है:—एकांत मिथ्यात्व, विपरीत मिथ्यात्व, विनय मिथ्यात्व, संशय मिथ्यात्व, अज्ञान मिथ्यात्व।

(आ) **अविरति**—आत्मा का अपने शुद्ध चिदानन्दमय स्वभाव से विमुख होकर बाहरी विषयों में लवलीन होना अविरति है। पाँचों इन्द्रियों और मन को वश में नहीं रखना और छः काय के जीवों की रक्षा न करके उनकी हिंसा करना अविरति है। ये अविरति बारह प्रकार की है।

(इ) **कषाय** जो आत्मा को कषे अर्थात् दुःख दे, वह कषाय है। जैसे क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, शोक आदि ये कषाय पच्चीस होती है।

अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ (चार) ४
अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ (चार) ४
प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ (चार) ४
संज्वलन क्रोध मान माया लोभ (चार) ४

हास्य[१], रति[२], अरति[३], शोक[४], भय[५], जुगुप्सा[६], स्त्रीवेद[७], पुरुषवेद[८], नपुंसकवेद[९], (९ नो कषाय) इस प्रकार १६ कषाय और ९ नो कषाय मिलकर कषाय के कुल पच्चीस भेद होते हैं।

(३) योग—मन वचन काय की क्रिया द्वारा आत्मा में हलन चलन होना योग कहलाता है। आत्मा में हलन चलन होने से ही कर्मों का आस्रव होता है। योग के मन, वचन, काय रूप मुख्य तीन भेद हैं। इसके विशेष भेद १५ होते हैं। ४ मनोयोग, ४ वचनयोग और सातकाययोग।

(१) सत्यमनोयोग (२) असत्यमनोयोग (३) उभय मनोयोग (४) अनुभय मनोयोग (५) सत्यवचनयोग (६) असत्यवचनयोग (७) उभयवचनयोग (८) अनुभयवचन-योग (९) औदारिककाययोग (१०) औदारिकमिश्रकाय-योग (११) वैक्रियककाययोग (१२) वैक्रियकमिश्रकाययोग (१३) आहारककाययोग (१४) आहारकमिश्रकाययोग (१५) कार्माणयोग।

नोटः—इस प्रकार ५ मिथ्यात्व, बारह १२ अविरति, पच्चीस २५ कषाय और १५ योग ये कुल मिलाकर आस्रव के ५७ भेद होते हैं।

(४) बंधतत्व—राग द्वेष के निमित्त से आये हुए शुभ अशुभ पुद्गल कर्मों का आत्मा के साथ जल और दूध की तरह मिल कर एकमेक हो जाना बंधतत्व है जैसे नाव में छेद के द्वारा पानी आकर नाव में इकट्ठा हो

जाता है, वैसे ही कर्म आकर आत्मा के साथ बंध जाते हैं। बंध के भी दो भेद हैं। भाव बन्ध और द्रव्य बन्ध। आत्मा के जिन विकार परिणामों से कर्म बन्ध होता है, उन विकार परिणामों को भाव बन्ध कहते हैं। और उस विकार भाव से जो पुद्गल कर्म परमाणु आत्मा के साथ दूध और पानी की तरह एकमेक होकर मिलते हैं। उसे द्रव्य बन्ध कहते हैं।

बन्ध और आस्रव साथ २ एक ही समय होते हैं। आस्रव कारण है, बन्ध कार्य है। इसलिये जितने आस्रव हैं वे सबही बन्धके कारण हैं। बन्ध चार प्रकार का होता है–(१) प्रकृतिबंध (२) प्रदेश बंध (३) स्थिति बंध (४) अनुभाग बंध

(५) संवरतत्व–आस्रव का न होना अर्थात् आते हुए कर्मों का रोक देना संवर है। जैसे जिस छेद से नाव में पानी आता है उस छेदमें डाट लगाकर पानी को आने से रोक दिया जाता है, वैसे ही शुद्ध भावों के द्वारा कर्मों को रोक दिया जाता है।

संवर के भी दो भेद हैं, भावसंवर, द्रव्यसंवर

भाव संवर–जिन परिणामों से कर्मों का आना रुकता है वे भाव संवर कहलाते हैं और उन्हीं के रोकने से

पुद्गल परमाणुओं का कर्म रूप होकर आत्मा की ओर न आना द्रव्यसंवर है।

संवर अच्छी भावनाओं, दश धर्मों का पालन करने और परीषह अर्थात् भिन्न भिन्न प्रकार के कष्ट समता-भाव से झेलने आदि से होता है।

संवर के मुख्य कारण ३ गुप्ति, १२ अनुप्रेक्षा (भावना), ५ व्रत, ५ समिति, १० धर्म, २२ परीषहजय, और ५ चारित्र है।

(च) व्रत—निश्चय में राग द्वेषादिक विकल्पों से रहित होने का नाम व्रत है। व्यवहार में अहिंसा, सत्य, अचौर्य ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यह पांच व्रत कहलाते हैं। इनका वर्णन पहले पढ़ चुके हो।

(छ) समिति—अपने शरीर से दूसरे जीवों को पीड़ा न होने की इच्छा से यत्नाचार रूप प्रवृत्ति करना समिति कहलाता है।

ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और उत्सर्ग ये पांच समिति हैं।

इनका वर्णन पहले पाठ १६ साधु परमेष्टी में पढ़ चुके हो।

(ज) गुप्ति—मन, वचन और काय के व्यापार को वश करना काबू में लाना व रोकना गुप्ति है। गुप्ति तीन होती है:—१ मनोगुप्ति २ वचनगुप्ति और ३ काय गुप्ति।

[देखो पाठ १४ आचार्य परमेष्ठी]

(झ) दशधर्म—(१) उत्तम क्षमा (२) उत्तम मार्दव (३) उत्तम आर्जव (४) उत्तम सत्य (५) उत्तम शौच (६) उत्तम संयम (७) उत्तम तप (८) उत्तम त्याग (९) उत्तम आकिंचन्य (१०) उत्तम ब्रह्मचर्य यह दश धर्म हैं।

[देखो पाठ १४ आचार्य परमेष्ठी]

(ट) अनुप्रेक्षा—बारंबार विचार करने को अनुप्रेक्षा या भावना कहते हैं। ये भावनायें बारह हैं। इन्हें ही बारह भावना कहा करते है।

(१) अनित्य (२) अशरण (३) संसार (४) एकत्व (५) अन्यत्व (६) अशुचि (७) आस्रव (८) संवर (९) निर्जरा (१०) लोक (११) बोधिदुर्लभ (१२) धर्म।

(१) अनित्य भावना—ऐसा विचार करना कि धन धान्यादि जगत् की सब वस्तु विनाशीक हैं इनमें से कोई भी नित्य नहीं है।

(२) **अशरण भावना**—ऐसा विचार करना कि जगत में जीव को कोई शरण नहीं है। कोई किसी को मरने से बचाने वाला नहीं है।

(३) **संसार भावना**—ऐसा चिंतवन करना कि यह संसार असार है और संसार में कहीं भी सुख नहीं है।

(४) **एकत्व भावना**—ऐसा विचार करना कि ये जीव सदा अकेला ही है अपने कर्मों के फल को अकेला आप ही भोगता है।

(५) **अन्यत्व भावना**—ऐसा विचारना कि शरीर जुदा है और मैं जुदा हूं। जब यह शरीर ही अपना नहीं है तो फिर संसार का कोई भी पदार्थ मेरा अपना कैसे हो सकता है।

(६) **अशुचि भावना**—ऐसा विचारना कि यह शरीर अत्यन्त अपवित्र और घिनावना है। इससे ये ममत्व करने के योग्य नहीं है।

(७) **आस्रव भावना**—ये विचारना कि आस्रव से यह जीव संसार में रुलता है, इसलिये जो आस्रव के कारण हैं, उनका विचार करके उनसे बचने का ही उपाय करना चाहिये।

(८) संवर भावना—ऐसा विचार करना कि संवर से ही अर्थात् आस्रव के रोकने में ही यह जीव संसार से पार हो सकता है, और इसलिये संवर के कारणों को विचार करके उनको ग्रहण करना चाहिये।

(९) निर्जरा भावना—ऐसा विचार करना कि कर्मों का कुछ दूर होना निर्जरा है इसलिये निर्जरा के कारणों को जान कर जिस तिस प्रकार बंध हुये कर्मों को दूर करना चाहिये।

(१०) लोक भावना—ऊर्द्धलोक, मध्यलोक, पाताल-लोक इन तीन लोक के स्वरूप का चिंतवन करना कि लोक कितना बड़ा है, उसमें क्या २ स्थान हैं, और किस २ स्थान में क्या २ रचना है और वहां क्या २ होता है ऐसा विचार करना लोक भावना है। इस भावनामें संसार परिभ्रमण की दशा मालूम होती है और संसार से छूटने और मोक्ष प्राप्ति की अभिलाषा होती है।

(११) बोधिदुर्लभ भावना—ऐसा विचार करना कि यह मनुष्य देह बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती है। ऐसे अमोलक मनुष्य जन्म को पाकर वृथा ही नहीं खोना चाहिये, किन्तु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र

रूप रत्नत्रय धर्म को पालन कर अपना जन्म सफल करना चाहिये।

(१२) धर्म भावना—धर्म के स्वरूप का चिंतवन करना तथा धर्म ही इस लोक और परलोक के सुखों को देने वाला है और धर्म ही दुख से छुड़ाकर मोक्ष के श्रेष्ठ सुख को देने वाला है। ऐसा विचार करना धर्म भावना है।

(ठ) परीषहजय—मुनि महाराज कर्मों की निर्जरा और काय क्लेश करने के लिये जो परीषह अर्थात् पीड़ा समता भावों से स्वयं सहन करते हैं। उनको परीषह जय कहते हैं परीषह बाईस हैं।

(१) क्षुधा (२) तृषा (३) शीत (४) उष्ण (५) दंश मशक (६) नग्न (७) अरति (८) स्त्री (९) चर्या (१०) आसन (११) शय्या (१२) आक्रोश (१३) बध (१४) याचना (१५) अलाभ (१६) रोग (१७) तृणस्पर्श (१८) मल (१९) सत्कार पुरस्कार (२०) प्रज्ञा (२१) अज्ञान (२२) अदर्शन।

[१] क्षुधा परीषह जय—भूख की वेदना होने पर उसके वश न होकर दुःख सह लेने को कहते हैं।

(२) **तृषा परीषह जय**—प्यास की तीव्र वेदना पर उसके वश न होकर दुःख सह लेने को कहते है।

(३) **शीत परीषह जय**—शीत अर्थात् जाड़े के कष्ट सहन करने को कहते है।

(४) **उष्ण परीषह जय**—उष्णता अर्थात् गर्मी के संताप सहने को कहते हैं।

(५) **दंश मशक परीषह जय**—डांस, मच्छर, बिच्छू, कानखजूरे आदि जीवों के काटने की वेदना को सहन करने को कहते है।

(६) **नग्न परीषह जय**—किसी प्रकार के भी वस्त्र न धारण कर नग्न रहने को और लज्जा ग्लानि तथा किसी प्रकार के भी विकारों को न होने देने को कहते है।

(७) **अरति परीषह जय**—संसार के इष्ट अनिष्ट पदार्थों में राग द्वेष न कर समता भाव धारण करने को कहते हैं।

(८) **स्त्री परीषह जय**—ब्रह्मचर्य व्रत भंग करने के लिये स्त्रियों द्वारा अनेक उपद्रव किये जाने पर भी चित्त में किसी प्रकार का विकार भाव नहीं करने को कहते हैं।

(९) **चर्या परीषहजय**—किसी प्रकार की सवारी की इच्छा न करके मार्ग के कष्ट को न गिन कर भूमि शोधन करते हुए गमन करने को कहते हैं।

(१०) **आसन परीषहजय**—देर तक एक ही आसनसे बैठे रहने का दुःख सहन करने को कहते हैं।

(११) **शय्या परीषहजय**—खुर्दरी, पथरीली, कांटों से भरी हुई भूमि में शयन करके दुखी न होने को कहते हैं।

(१२) **आक्रोश परीषहजय**—दुष्ट मनुष्यों द्वारा कुवचन कहे जाने पर तथा गालियां दिये जाने पर भी किंचित् मात्र भी क्रोधित न हो कर उत्तम क्षमा धारण करने को कहते हैं।

(१३) **वध परीषहजय**—दुष्ट मनुष्यों द्वारा वध बंधनादि दुःख दिये जाने पर समता भाव धारण करने और उन दुःखों को शांति पूर्वक सहन करने को कहते हैं।

(१४) **याचना परीषहजय**—किसी से भी किसी प्रकार की भी याचना न करने (मांगने) को कहते हैं

मुनिराज भूख प्यास लगने अथवा रोग हो जाने पर भी भोजन औषधादि नहीं मांगते।

(१५) **अलाभ परीषहजय**—अनेक उपवासों के बाद नगर में भोजन के लिये जाने पर भी निर्दोष आहार वगैरह न मिलने पर भी क्लेशित न होने को कहते हैं।

(१६) **रोग परीषहजय**—शरीर में अनेक रोग हो जानेपर समता भाव के साथ पीड़ा को सहन करते हुये अपने आप रोग दूर करने का उपाय न करने को कहते हैं।

(१७) **तृणस्पर्श परीषहजय**—शरीर में शूल कांटा कंकर फांस आदि चुभ जाने पर दुखी न होने और उनके निकालने का उपाय न करने को कहते हैं।

(१८) **मल परीषहजय**—शरीर में पसीना आ जाने अथवा धूल मिट्टी लगजाने के कारण शरीर के महा मलीन हो जाने पर स्नान आदि न करके चित्त निर्मल रखने को कहते हैं।

(१९) **सत्कार पुरस्कार परीषहजय**—किसी के आदर सत्कार अथवा विनय प्रणाम वगैरह न करने पर

तथा तिरस्कार किये जाने पर हर्ष विषाद न करके समता भाव धारण करने को कहते हैं।

(२०) प्रज्ञा परीषह जय—अधिक विद्वान् अथवा चारित्रवान हो जाने पर भी किसी प्रकार के मान न रखने को कहते हैं।

(२१) अज्ञान परीषह जय—बहुत दिनों तक तपश्चरण करने पर भी अवधिज्ञान आदि न होने से अपने आप खेद न करने को और ऐसी दशा में दूसरों से "अज्ञानी" "मूढ" आदि मर्म-भेदी वचन सुनकर दुखित न होने को कहते हैं।

(२२) अदर्शन परीषह जय—बहुत दिनों तक अधिक तपश्चरण करने पर भी किसी प्रकार के फल की प्राप्ति न होने से सम्यग्दर्शन को दूषित न करने को कहते हैं।

(ड) चारित्र—आत्म स्वरूप में स्थित होना चारित्र है इसके पांच भेद हैं:-सामायिक चारित्र, छेदोपस्थापना चारित्र, परिहारविशुद्धिचारित्र, सूक्ष्मसांपरायचारित्र, यथाख्यात चारित्र।

(६) **निर्जरा तत्त्व**—आत्मा के साथ बंधे हुए कर्मों का थोड़ा २ करके आत्मा से जुदा होना निर्जरा है। जैसे नाव में छिद्र के द्वारा आकर जो पानी भर गया था, उसको थोड़ा २ करके बाहर निकाल दिया जावे। वैसे ही आत्मा के साथ बंधे हुए कर्मों को धीरे २ तपश्चरण द्वारा आत्मा से जुदा कर दिया जाता है। आत्मा के जिस परिणाम से पुद्गल कर्म फल देकर नष्ट हो जाते है, वह भाव **निर्जरा** है। समय पाकर या तपश्चरण द्वारा कर्मरूप पुद्गलों का आत्मा से झड़ना **द्रव्य निर्जरा** है।

फल देकर अपने समय पर कर्म का आत्मा से जुदा होना **सविपाक निर्जरा** है।

तप करके समय से पहले ही किसी कर्म को आत्मा से जुदा कर देना **अविपाक निर्जरा** है।

(७) **मोक्ष तत्त्व**—सर्व कर्मों का नष्ट होकर आत्मा के शुद्ध होने का नाम मोक्ष है।

जैसे नाव के अन्दर भरा हुआ सब पानी बिल्कुल निकाल कर नाव को साफ कर दिया जाता है, वैसे ही सर्व कर्मों से सर्वथा रहित होने पर आत्मा शुद्ध परमात्म स्वरूप

होता है। आत्मा का शुद्ध परिणाम जो सर्व पुद्गल कर्मों के नाश का कारण होता है वह **भाव मोक्ष** है। आत्मा में सर्वथा द्रव्य कर्मों का जो दूर होना है वह **द्रव्य मोक्ष** है।

पदार्थ

इन्हीं ऊपर बताये हुवे सात तत्त्वों में पुण्य और पाप मिलाने से ही नौ पदार्थ कहलाते हैं।

पुण्य—उसे कहते है जिसके उदय से जीवों को सुख देने वाली सामग्री मिले। जैसे किसी को व्यापार में खूब लाभ होना, घर में सुपुत्र का होना, उच्चपद का प्राप्त होना, ये सब पुण्य के उदय से होते हैं।

परोपकार करना, दान देना, भगवान् का पूजन करना, ज्ञान का प्रचार करना, धर्म का पालन करना आदि शुभ कार्यों से पुण्य का बंध होता है।

पाप—जिसके उदय से जीवों को दुख देने वाली चीजें मिलें। जैसे रोगी हो जाना, पुत्र का मर जाना, धन चोरी चला जाना इत्यादि यह सब पाप के उदय से होते हैं। हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, जूआ खेलना,

हे जीव भोग से शांत हो विचार तो, इसमें कौन-सा सुख है।११५

दूसरों की निन्दा करना, दूसरों का बुरा चाहना आदि बुरे कार्यों से पाप का बन्ध होता है।

प्रश्नावली

१ तत्त्व किसे कहते हैं? और कितने होते हैं? नाम बताओ।

२ (अ) प्राण कितने प्रकार के होते है? बताओ मुक्त जीवों के कौन से प्राण होते है और संसारी जीवों के कौन कौन से प्राण होते है?

(आ) नीचे लिखों में कितने और कौन से प्राण पाये जाते है? स्त्री, देव, नारकी, कुर्सी, इञ्जन, चिड़िया, वृक्ष, चिवटी, मक्खी, लड़का, लट।

३ बताओ सातों तत्त्वों मे कौन-कौन से तत्त्व ग्रहण करने के योग्य और कौन से तत्त्व दूर करने के योग्य है? मोक्ष, संवर, निर्जरा, आस्रव इन तत्त्वों को क्रमवार लिखो। और इनका स्वरूप दृष्टान्त सहित समझाओ?

४ संक्षिप्ततया बताओ कि तीसरे तत्त्व के कितने व कौन से मुख्य कारण हैं? मिथ्यात्व और अविरति के लक्षण लिख कर १५ योगों के नाम लिखो।

५ बंध किसे कहते है? और यह कितने प्रकार का है? बंध और आस्रव में क्या भेद है?

६ संवर तत्त्व के मुख्य कारणों को लिखो। अनुप्रेक्षा या भावना में क्या भेद है? निम्नलिखित के लक्षण लिखो:— अन्यत्व भावना, निर्जरा भावना, संसार भावना, लोक भावना धर्म भावना।

७ चारित्र किसे कहते हैं? ये कितने होते हैं? नाम लिखो।

८ पदार्थ कितने व कौन २ से होते हैं? कौन २ से कार्य करने में पुण्य और किनमें पाप का बंध होता है?

९ (क) परीषह किसे कहते हैं? परीषह कितनी हैं और उन को कौन सहन करते हैं और क्यों?

(ख) नीचे लिखी परीषहों का स्वरूप बताओ:—
आक्रोश परीषह, याचना परीषह, अलाभ परीषह, सत्कार-तिरस्कार परीषह, चर्या परीषह।

१० (क) नीचे लिखे साधुओं ने कौनसी परीषह सही:—
ऋषभ देव स्वामी को आहार के लिये जाने पर भी आहार न मिला, छह महीने तक बराबर अन्तराय रहा।

(ख) आनन्द स्वामी जब बन में ध्यानारूढ़ खड़े थे तो सिंह ने उनके शरीर को विदारा।

(ग) राजा श्रेणिक ने यशोधर स्वामी के गले में मरा हुआ सांप डाल दिया, उससे चिंवटियां उनके शरीर पर चढ़ गईं और उन्हें बड़ा कष्ट दिया।

(घ) श्रीमानतुङ्गाचार्य को राजा भोज ने जेल में डलवा दिया।

(ङ) सनत्कुमारमुनि को कुष्ठ होगया बड़ी पीड़ा हुई—वैद्य मिलने पर भी उन्होंने इलाज की इच्छा प्रगट नहीं की।

(च) सूर्यमित्र मुनि वायुभूति को संबोधन के लिये उसके घर गये। वायुभूति ने उनको बहुत कुछ बुरा भला कहा—उन्होंने सब शांति से सहन कर लिया।

(छ) एक मुनि कड़ी धूप में खड़े हैं, कई दिन से आहार नहीं लिया है, प्यास के मारे गला सूख रहा है-शरीर पर

पसीने के कारण रेत जम गया है आंख में कुनक गिर पड़ा है-ये कष्ट बिना खेद सहन कर रहे हैं ?

एक समय में अधिक मे अधिक कितनी परीषह हो सकती हैं ?

११ नीचे लिखे कामो से पुण्य होगा या पाप:--छात्रों को छात्र वृत्ति देने मे, लंगड़े, लूले, अपाहज आदमियों को रोटी खिलाने मे, जुवारी तथा शराबी को रुपया पैसा दान देने मे, मेंढ़ा तीतर लड़ाने मे। प्याउ और सदाव्रत लगाने मे। छोटी उम्र तथा बुढ़ापे में शादी करने कराने मे। विवाह शादियों मे व्यर्थ व्यय करने मे औषधालय तथा कन्याशाला खुलवाने मे, टूटे फूटे मन्दिरो का जीर्णोद्धार करने मे। चोरी करनेमे, शिकार खेलने मे, बदचलनी करने मे, सिगरेट बीड़ी पीने मे, लड़के लड़कियों को बेचने मे या काज करने मे।

पाठ २३

विद्यार्थी का कर्त्तव्य

प्यारे बालको ! इस पाठ में हम तुम्हें यह बतलाना चाहते हैं कि एक विद्यार्थी का क्या कर्त्तव्य है। वैसे तो कर्त्तव्य बहुत से होते हैं, परन्तु हम नीचे कुछ मोटे मोटे कर्त्तव्यों की ओर तुम्हारा ध्यान दिलाना चाहते हैं, जिनका पालन करके तुम अपना जीवन सुधार सकते हो।

स्वास्थ्य

सदा निरोग रहने का यत्न करो। अपने स्वास्थ्य रक्षा की ओर अधिक ध्यान दो। यदि किसी का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, तो वह किसी काम का नहीं रहता है। स्वस्थ पुरुष का चित्त प्रसन्न रहता है, उसके शरीर में चुस्ती रहती है। स्वस्थ पुरुष का मन अपने आप काम करने को चाहता है। स्वास्थ्य का ब्रह्मचर्य व्यायाम खानपान की शुद्धि से गहरा सम्बन्ध है।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य एक प्रकार का तप है। विद्यार्थियों के लिये ब्रह्मचारी रहकर विद्या पढ़ना आवश्यक है। विद्यार्थी होते हुये अपने मन को कभी किसी विषय वासना की ओर न जाने दो। सत्य, संतोष, क्षमा, दया, प्रेम आदि गुण ब्रह्मचारियों के लिये बड़े ही सुलभ हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य के लिये न धन की, न समय की और न खास स्थान की ही आवश्यकता है। आवश्यकता है तो एक दृढ़ प्रतिज्ञा की। इसलिये जब तक विद्यार्थी हो ब्रह्मचर्य का नियम लो। उत्तम रीति से उसका पालन करो। फिर तुम कुछ दिनों में इसके मीठे फल को भी

चाखोगे। मन में दृढ़ता रख कर बुरे विचार न आने दो, वीर्य का दुरुपयोग न करो, बुरी संगति से बचो। तुम्हारा आत्म बल बढ़ेगा। तुम देशोन्नति करने को समर्थ होगे। विद्वानों में तुम्हारा आदर होगा। तुम्हारे पास धन की कमी नहीं रहेगी। अपने धर्म को भली भांति पालन कर सकोगे।

व्यायाम

विद्यार्थियों को बड़ा मानसिक परिश्रम करना पड़ता है। वे यदि कोई व्यायाम न करें तो रात दिन बैठे २ उनके हाथ पांव शिथिल हो जावेंगे। उनका शरीर अस्वस्थ हो जायगा। व्यायाम करने से शरीर हृष्ट पुष्ट और बलवान होता है। व्यायाम करने से पाचन शक्ति बढ़ती है, भूख अधिक लगती है। व्यायाम से शरीर में पसीना आता है और पसीने के साथ शरीर का मैल बाहर निकल जाता है। व्यायाम करने से मन तथा शरीर में एक प्रकार की फुर्ती और ताजगी आ जाती है, शरीर निरोग रहता है। अपने शरीर के अनुसार जो व्यायाम, योग्य जान पड़े उसी का अभ्यास करना उचित है। भागना, दौड़ना, कबड्डी खेलना, क्रिकेट, हाकी, फुटबाल आदि खेलों का खेलना लाभदायक है। सवेरे शाम खुले मैदान में सैर करना भी

उपयोगी है। इस लिये नियत समय पर किसी न किसी प्रकार का व्यायाम करना विद्यार्थियों का एक कर्त्तव्य है।

खान पान तथा रहन सहन

अपने खान पान की शुद्धि की ओर अधिक ध्यान दो। इससे शरीर स्वस्थ रहता है। सड़े गले या अधपके पदार्थ कभी न खाओ। भूख से अधिक मत खाओ। देर से पचने वाला भोजन मत करो। रात्रि में मत खाओ। सदा नियत समय पर भोजन करो। शुद्ध छना हुआ जल पीओ। मदिरा, तम्बाकू, बीड़ी आदि मादक पदार्थों का सेवन मत करो।

उदारता

अपने मन को सदा शांत और प्रसन्न रक्खो। बुरे भावों को अपने मन में न आने दो। छल कपट से सदा दूर रहो। सरल परिणामी बनो। यदि कोई मनुष्य तुम्हारे साथ कोई उपकार करे तो उसे न भूल जाओ। सदा उदार-चित्त बनो। सब के साथ अच्छा व्यवहार करो। किसी से द्वेष न करो। संकुचित दृष्टि को छोड़ो। सहन शीलता सीखो। इस गुण के बिना मनुष्य उदारचित्त नहीं हो सकता। यदि किसी दूसरे का तुम से अपराध हो जावे तो उससे अपने अपराध की क्षमा कराओ। अपनी पुस्तक,

दावात, क़लम आदि चीजों को सदा नियत स्थान पर रक्खो। ऐसा करने से ज़रूरत पड़ने पर तुम्हारी चीजें तुरन्त ही मिल जायँगी, उसके ढूंढ़ने में व्यर्थ ही समय न जायेगा।

विनय

सदा अपने माता पिताकी आज्ञा का पालन करो। ऐसा करना तुम्हारा परम कर्त्तव्य है। सदा यही प्रयत्न करो कि वे तुमसे प्रसन्न रहें। उन्होंने तुम्हारा पालन किया है तुम्हारे लिये बड़े कष्ट उठाये, जितना उनका आदर करो थोड़ा है। माता पिता के दूसरे स्थान पर विद्या गुरु हैं। वह ज्ञान देते हैं। भले बुरे को पहचानना सिखाते हैं। गुरु की आज्ञा मानना और उनका आदर करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। पाठशाला जाकर पहले गुरु जी को प्रणाम करो। फिर आदर से अपने स्थान पर बैठो। जो कुछ पूछो, विनय से पूछो। और जो कुछ वह कहें ध्यान से सुनो, और उसे याद रक्खो। जो विद्यार्थी तुम्हारे से ऊंची कक्षामें हैं, उनकी विनय करो। जो नीची कक्षा में हैं उनसे प्रेम करो। अपने सहचारियों का भी यथा योग्य आदर करो। आपस में झगड़ा न करो, सबके साथ मेल रक्खो। खोटे लड़कों की संगति से बचो। तुम्हारे साथियों

में जो निर्बल हों उनकी सहायता करो । अपने ऊपर भरोसा रक्खो । सब बड़ों को योग्यतानुसार प्रणाम करो ।

मित्रता

अपने मित्रों से प्रेम रक्खो, मित्र जीवन भर का साथी होता है। किसी को मित्र बनाने से पहले उसकी खूब परख कर लेना चाहिये, नहीं तो फिर पीछे पछताना पड़ता है। यदि मित्र कपटी हो तो उससे सुख के बदले अनेक दुख मिलते हैं।

समय

बालको ! सदा समय की कदर करो। समय एक बहुमूल्य पदार्थ है। बहुत से लड़के अपने समय को आलस्य में खो देते हैं। बहुत से व्यर्थ की बातों में नष्ट कर डालते हैं। यह ठीक नहीं है। जो विद्यार्थी समय पर अपनी पढाई लिखाई वगैरह का काम नहीं करते हैं, उनको पीछे पछताना पड़ता है, परीक्षा के समय वे फेल हो जाते हैं। इस लिये हर काम समय पर करो। एक समय विभाग बनालो। जिस काम के लिये जो समय रक्खो उसे उस समय में ही कर डालो। धर्म के समय में धर्म का पालन करो। पढ़ने के समय खूब पढ़ो। खेलने के समय खूब उत्साह के साथ खेलो। समय पर पाठशाला जाओ।

इत्यादि। आज का काम कल पर मत छोड़ो। ऐसा समय विभाग बनाओ कि पहले जरूरी २ कार्यों को करो। एक समय में एक ही कार्य करो। जिस काम को हाथ में लो उसे पूरा करके छोड़ो, अधूरा न रहने दो। रात्रि को सोते समय विचार लो कोई काम रह तो नहीं गया।

परिश्रम

जो काम तुम्हें करना हो परिश्रम के साथ करो। जो कुछ पढ़ो, मन लगाकर पढ़ो। किसी बात को एक बार न समझ सको तो उसे दूसरी बार समझने का यत्न करो। पढ़ने में खूब परिश्रम करो। परिश्रम करने से मोटी बुद्धि वाले भी बड़े विद्वान् हो जाया करते हैं। यदि तुम्हें कोई कार्य कठिन मालूम हो तो उसे घबड़ा कर न छोड़ दो। साहस छोड़ कर न बैठ जाओ। परिश्रम करके उस कार्य को पूरा कर के छोड़ो। जो भी कार्य करो उसे उत्साह से करो। परिश्रमी और साहसी बालकों का हर समय मान होता है। जो अपने पैरों पर खड़ा रह कर शौर्यता के साथ साहस पूर्वक कार्य करता है जय उसी की होती है और वही वीर कहलाता है।

आत्म गौरव

सदा अपने देश, जाति, कुल तथा धर्म की मर्यादा

का पालन करते रहो। इनकी प्रतिष्ठा रखना ही आत्म गौरव है। आत्म गौरव रखने के लिये विद्या, क्षमा, परोपकार, विनय आदि गुणों की बड़ी आवश्यकता है। कभी भी कोई कार्य ऐसा न करो कि जिससे तुम्हारे धर्म पर दोष लगे, तुम्हारे देश, तुम्हारीजाति तुम्हारेकुल तथा तुम्हारी पाठशाला की प्रतिष्ठा भंग हो। जहाँ तक तुम से बन सके इनकी सेवा करो, कि जिससे इनकी प्रतिष्ठा संसार में सदा उज्ज्वल बनी रहे।

"जिसको न निज गौरव तथा, निज देशका अभिमान है।
वह नर नहीं नर-पशु निरा है और मृतक समान है॥"

भावनायें

सदा अपने दिल में यह भावना करो, कि मेरी आत्मा में किसी समय भी खोटे भाव न हों। मेरे यह भाव रहें कि जगत् के सब जीवों का भला हो, सब ही जीव मेरे समान हैं। गुणवानों को देख कर मेरे हृदय में ऐसी खुशी हो कि जैसे किसी रंक को चिन्तामणिरत्न के मिलने से प्राप्त होती है। मेरी यह अभिलाषा है कि दीन दुखी जीवों पर मेरे हृदय में दया उत्पन्न हो। उनको देखकर मेरा चित्त कांप उठे और मेरा यह दृढ़ विचार हो

जावें कि जिस तरह भी बने उनके दुख दूर करने का प्रयत्न करूँ।

मेरी यह भावना है कि जो पाखंडी तथा अधर्मी हैं, दुष्ट है, जो भलाई के बदले बुराई करते हैं, अथवा जो मेरा आदर तथा सत्कार नहीं करते हैं, मैं उनसे न राग करूँ न द्वेष। प्यारे बालको! इस सब कथन का सारांश यह है कि सदा अपने मन और शरीर को पवित्र रक्खो। विषय वासनाओं का त्याग करो। स्वार्थबुद्धि को हटाओ। तुम में जो दोष हैं, उन्हें दूर करने का संकल्प करो, तथा गुणों को बढ़ाने में प्रयत्नशील बनो। ऐसा करने से अवश्य ही तुम्हारा जीवन सुंदर, उदार, सुखी और शांत बन जावेगा।

प्रश्नावली

१ विद्यार्थी किसे कहते हैं? एक विद्यार्थी के कौन २ से कर्त्तव्य हैं?
२ स्वास्थ्य किसे कहते हैं और इसको प्राप्त करने के लिये कौन २ सी बातों पर तुम ध्यान दोगे?
३ व्यायाम किसे कहते हैं? और व्यायाम करने से क्या लाभ हैं? बताओ ऐसे कौन से व्यायाम है जो लड़कियों के लिये उचित समझे जा सकते हैं?
४ विनय किसे कहते हैं? तुम अपने माता पिता गुरु और सहपाठियों तथा अपने से नीची कक्षाओं के छात्रों के प्रति इस गुण का किस प्रकार पालन करोगे?
५ मित्रता करने से प्रथम क्या ख्याल रखना चाहिये? समय

का आदर क्यों करना चाहिये और अपना समय किस प्रकार व्यतीत करना चाहिये ?

६ संसार में ऐसी कौनसी शक्ति है जिससे मनुष्य प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त कर सकता है ? "आत्म गौरव" का क्या अभिप्राय है ? तुम्हें अपने दिल में कौनसी भावनायें भानी चाहियें ?

पाठ २४

श्रावक की ग्यारह प्रतिमा

श्रावकों के आचरण के लिये ११ दर्जे होते हैं। उन्हें ग्यारह प्रतिमा कहते है। श्रावक ऊंचे २ चढ़ता हुआ पहली से दूसरी में, दूसरी से तीसरी में और इसी तरह ग्यारहवीं, प्रतिमा तक चढ़ता है, और उससे चढ़कर साधु या मुनि हो जाता है। अगली २ प्रतिमाओं में पहले की प्रतिमाओं की क्रिया का पालन भी जरूरी है।

(१) **दर्शन प्रतिमा**--निर्मल सम्यग्दर्शन सहित निरतिचार आठ मूलगुणों का पालन करना और सात व्यसनों का अतिचार सहित त्याग करना दर्शन प्रतिमा है।

इस प्रतिमा का धारी दार्शनिक श्रावक कहलाता है। वह जिनेन्द्र देव, निर्ग्रंथ गुरु और दयामयधर्म के सिवाय और किसी की मान्यता कभी नहीं करता।

जिन धर्म में उसका दृढ़ विश्वास होता है। उसको किसी प्रकार की शंका तथा भय नहीं होता। वह धर्म का साधन करके विषयसुखों की इच्छा नहीं करता वह धर्मात्माओं तथा किसी भी दीन दुखी मनुष्यों तथा पशुओं को रोगी और मलिन देखकर उनसे ग्लानि नहीं करता। मूढ़ता से देखा देखी कोई अधर्म क्रिया नहीं करता। यदि किसी समय कोई धर्म से डिगता हो तो वह उसे सहायता देकर धर्म में दृढ़ करता है और यथाशक्ति उनका उपकार करता है तथा सच्चे ज्ञान का प्रकाश कर धर्म की प्रभावना करता है।

भूल कर भी वह अपनी जाति, कुल, धन, बल, रूप, अधिकार, विद्या और तप का गर्व नहीं करता। निरभिमानी और मंद कषायी रहता है। वह कुगुरु, कुदेव की वंदना नहीं करता तथा पीपल पूजना, कलम, दावात तथा रुपये पैसे का पूजना आदि लोक मूढ़ता नहीं करता। कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र व इनके भक्त जनों की प्रशंसा तथा संगति इस प्रकार नहीं करता, जिससे उसके सम्यग्दर्शन में दोष लगे। इस प्रकार सब प्राणियों से प्रेम रखते हुए वह अपने श्रद्धान की रक्षा करता है।

(२) **व्रत प्रतिमा**-५ अणुव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह परिमाण।

३ गुणव्रत-दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदंडव्रत।

४ शिक्षाव्रत-सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोगपरिमाण, अतिथि संविभाग। इन १२ व्रतों का पालन करना व्रत प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी व्रती श्रावक कहलाता है वह अपने व्रतों में कोई अतीचार नहीं लगाता।

(३) **सामायिक प्रतिमा**—प्रतिदिन सवेरे, दोपहर, शाम को छः घड़ी या कम से कम दो घड़ी तक निरतिचार सामायिक करना सामायिक प्रतिमा है।

(४)**प्रोषध प्रतिमा**—प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को १६ पहर का अतिचार रहित उपवास करना, और आरम्भ परिग्रह को त्याग करके एकांत में बैठ कर धर्म-ध्यान करना प्रोषध प्रतिमा है। १६ पहर का प्रोषध उत्तम होता है। १२ पहर का मध्यम और ८ पहर का जघन्य प्रोषध कहलाता है।

(५) **सचित्तत्याग प्रतिमा**—हरी वनस्पती अर्थात् कच्चे फल फूल बीज पत्ते वगैरह को न खाना सचित्त त्याग प्रतिमा है। जिसमें जीव होते हैं, उसे सचित्त कहतेहैं

इसलिये ऐसे पदार्थों को जिनमें जीव न हो खाना सचित्त त्याग प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी कच्चे जल का भी त्याग करता है, परन्तु वह स्वयं सचित्त पदार्थ को अचित्त बनाकर ग्रहण कर सकता है।

(६) **रात्रिभोजनत्यागप्रतिमा**—मन वचन काय से और कृत, कारित, अनुमोदना से रात्रिमें हर प्रकारके आहार का सर्वथा त्याग करना रात्रि भोजन त्याग प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी सूरज छिपने के २ घड़ी पहले से सूरज निकलने के २ घड़ी पीछे तक आहार पानी का सर्वथा त्याग करता है।

(७) **ब्रह्मचर्यप्रतिमा**—मन, वचन, काय से स्त्री मात्र का त्याग करना तथा निरतिचार ब्रह्मचर्य पालन करना ब्रह्मचर्य प्रतिमा है।

(८) **आरम्भत्यागप्रतिमा**—मन, वचन, काय से और कृत, कारित, अनुमोदना से गृह कार्य संबंधी सर्व प्रकार की क्रियाओं का त्याग करना आरम्भ त्याग प्रतिमा है इस प्रतिमा का धारी पूजनार्थ स्नान पूजा व दान कर सकता है।

(६) **परिग्रहत्यागप्रतिमा**—धन धान्यादि दश प्रकार के बाह्य परिग्रह को त्याग कर संतोष धारण करना परिग्रह त्याग प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी अपने लिये

कुछ आवश्यक वस्त्र रख लेता है। रुपया पैसा पास नहीं रखता। घर का त्याग कर धर्मशाला में रहता है।

(१०) अनुमतित्यागप्रतिमा—गृहस्थाश्रम के किसी भी सांसारिक कार्य की अनुमोदना नहीं करना अर्थात् सलाह नहीं लेना अनुमति त्याग प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी भोजन के समय जो कोई भी उसे भोजन के लिये बुलावे उसके यहां शुद्ध भोजन कर आता है, परन्तु यह नहीं कहता "कि मेरे लिए अमुक भोजन बनादो।"

(११) उद्दिष्टत्यागप्रतिमा—बन में या मठ में तपश्चरण करते हुए रहना, खंड वस्त्र धारण करना और भिक्षा वृत्ति से योग्य आहार लेना उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा है, इस प्रतिमा का धारी अपने निमित्त बनाये हुए भोजन को नहीं ग्रहण करता है। इस प्रतिमा के दो भेद हैं।

क्षुल्लक और ऐलक

१—क्षुल्लक—उचित समय पर अपनी डाढ़ी आदि के केश उस्तरे व कैंची से कतरवाते हैं, लंगोटी और उसके साथ एक ओछी चादर तथा कमंडलु और पीछी रखते हैं। ये गृहस्थ के यहां बैठकर किसी पात्र में भोजन करते हैं।

२—ऐलक—यह केशों का लोंच करते हैं, और केवल लंगोटी धारण करते हैं, तथा कमंडलु पीछी रखते हैं।

गृहस्थ के यहां अपने हाथ में ही बैठ कर भोजन करते हैं।

प्रश्नावली

१ प्रतिमा किसे कहते हैं और इसके कितने भेद हैं? नाम बताओ पहली प्रतिमा के धारी के लिये क्या २ करना और क्या २ न करना जरूरी है?

२ जब दूसरी प्रतिमा मे सामायिक व्रत और प्रोषधोपवास व्रत धारण कर लिये जाते है तो फिर सामायिक प्रतिमा और प्रोषध प्रतिमा जुदा २ क्यों रक्खी?

३ प्रतिमा का पालन कौन करते हैं? एक मनुष्य सचित्त त्याग प्रतिमाका धारी है तो बताओ वह और कौन२ सी प्रतिमाओं का पालन करता है।

४ सचित्त किसे कहते हैं? पांचवीं प्रतिमा का स्वरूप क्या है? इस प्रतिमा का धारी कच्चा जल पीता है या नहीं? उत्तर कारण सहित लिखो।

५ छठी प्रतिमा में रात्रि भोजन का निषेध किया गया है, उससे पहली २ प्रतिमाओं का धारी रात्रि भोजन कर सकता है या नहीं? यदि नहीं तो फिर इस प्रतिमा में क्या विशेषता है?

६ बताओ ब्रह्मचारी कौनसे प्रतिमा के धारी हैं? और उनके क्या २ नियम हैं?

७ आठवीं प्रतिमा का धारी क्या २ काम कर सकता है और क्या २ नहीं।

८ नवीं प्रतिमा के धारी का क्या कर्त्तव्य है इस प्रतिमा का धारी घर में रह सकता है या नहीं? और क्यों?

९ दसवीं प्रतिमा का धारी धार्मिक कार्यों में अपनी अनुमति देगा या नहीं?

१० (क) उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा किसे कहते हैं ? इस प्रतिमा के धारी के लिये भोजन का क्या नियम है ?

(ख) इस प्रतिमा के कितने भेद हैं ? और उनमें क्या अंतर है।

पाठ २५

नीति के दोहे (पं० द्यानतरायजी)

नर की शोभा रूप है, रूप शोभ गुणवान।
गुण की शोभा ज्ञानतैं, ज्ञान छिमातैं जान ॥१॥
चेतन तुम तो चतुर हो, कहा भये मति हीन।
ऐसा नर भव पाय के, विषयन में चित दीन ॥२॥
बालपने अज्ञान मति, जोबन मद कर लीन।
वृद्धपने ह्वै शिथिलता, कहो धरम कब कीन ॥३॥
बाल पने विद्या पढ़ै, जोबन संजम लीन।
वृद्ध पने सन्यास ग्रहि, करै करम को छीन ॥४॥
चिंता चिता दुहू विषै, बिंदी अधिक सदीव।
चिंता चेतन को दहै, चिता दहै निर्जीव ॥५॥
बन बन होत न कलपतरु, तन तन बुध न अगाध।
फन फन होत न मणि सहित, जन जन होत न साध ॥६॥
निशि का दीपक चन्द्रमा, दिन का दीपक भान।
कुल का दीपक पुत्र है, तिहुँ जग दीपक ज्ञान ॥७॥
घर की शोभा धन महा, धन की शोभा दान।
सोभै दान विवेक सों, छिमा विवेक प्रधान ॥८॥
पूरण घट बोले नहीं, अरध भये छल कंत।
गुनी गुमान करै नहीं, निरगुण मान करंत ॥९॥

मैं मधु जोरया नहीं दियो, हाथ मलै पछताय।
धन मति संचो दान दो, माखी कहै सुनाय ॥१०॥
कला बहत्तर पुरुष की, तामैं दो सरदार।
एक जीवि की जीविका, दूजै जीव उद्धार ॥११॥
पंच परम पद नित जपै, पंचेन्द्री सुख टारि।
पंचम के पीछे चलै, पंच वही सरदार ॥१२॥
क्रोध समान न शत्रु है, क्षमा समान न मित्र।
निन्दा समान न गिलान है, प्रभु के सम न पवित्र ॥१३॥
बड़े वृक्ष को सेइये, पूरण फल अरु छाँहि।
जो कदाचि फल दे नहीं, छांहि बहुत तप नाहि ॥१४॥
रूखा भोजन करज सिर, और कलहिनी नार।
चौथे मैले कापड़े, नरक निसानी चार ॥१५॥
उद्यम बिन अरु माँगना, बेटी चलना चार।
सब दुख जिन के मिट गये, नई सुखी निहार ॥१६॥
दाना दुश्मन है भला, जो पीतम संबंध।
बड़े भाग्य तैं पाइये, सोना और सुगंध ॥१७॥
धन जोरैं तें ऊंच नहिं, ऊंच दान ते होत।
सागर नीचैं ही रहै, ऊपर मेघ उदोत ॥१८॥

प्रश्नावली

१ 'नीति के दोहों' से क्या अभिप्राय है? और इन दोहों के बनाने वाले कौन है?

२ मनुष्य की आयु मे मुख्य कितनी अवस्थायें होती हैं तथा उनको यह मनुष्य किस प्रकार खो देता है?

३ तीनों लोकों में प्रकाश करने वाली कौनसी वस्तु है? मनुष्यके लिये कितनी कलायें होती हैं और उनमें मुख्य कौनसी होती हैं?

४ इस संसार में सब से अधिक शत्रु और मित्र कौन है ?
५ संसार में मनुष्य किस प्रकार ऊँचा बन सकता है ?
६ नीति के दोहों में से अपनी पसंद के चार दोहे मुखाग्र सुनाओ

पाठ २६

वीर विमलशाह

वीर विमलशाह पाटन के वीर मंत्री के पुत्र थे। पिता के दीक्षा लेने पर विमलशाह की माता वीरमती अपने पुत्रों को लेकर पिता के घर चली गई। उसके भाई की स्थिति ठीक नहीं थी। विमल अपने मामा के साथ खेती करता था। वह बहुत पराक्रमी था-उसने बाण विद्या में अच्छी निपुणता प्राप्त करली थी। उसका नैपुण्य और पराक्रम देख कर श्रीदत्त सेठ ने अपनी पुत्री के साथ विवाह कर दिया। विवाह के पश्चात् वीरमती और विमलशाह पुनः पाटन में रहने लगे।

एक वार पाटन में राजा की ओर से वीरोत्सव हो रहा था। विमल ने वहां बाण विद्या के अनेक अद्भुत पराक्रम दिखलाये, तब भीमदेव राजा ने प्रसन्न होकर विमलशाह को दण्ड नायक बनाया।

विमलशाह एक सफल सेनापति हुआ उसने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त करके कीर्ति बढ़ाई थी। यह

देखकर राज्याधिकारी बड़े कुढ़ने लगे और उसे मारने के अनेक प्रयत्न किये। विमलशाह के विरुद्ध राजा के भी कान भर दिये गये। एक बार एक सिंह छोड़कर विमलशाह से पकड़ने को कहा गया विमलशाह ने बड़ी ही वीरता से सिंह को पकड़ कर पिंजरे में बन्द कर दिया।

एक वार मल्लयुद्ध में भी विमलशाह विजयी हुए तब मंत्री तथा अधिकारियों ने कहा कि विमलशाह के बाप दादों ने राज्य का ऋण लिया था वह अभी तक अदा नहीं हुआ है। विमलशाह यह असत्य आरोप सुन कर राज्यसभा में से चले गये और चुनौती दी कि राज्य से जो हो सके वह कर लेवे।

एक वार चन्द्रावति के उद्धत राजा धंधुक पर भीमदेव को विजय प्राप्त करने की सूझी परन्तु इसके लिये विमल शाह के सिवाय अन्य कोई वीर दिखाई नहीं दिया, तब राजा भीमदेव ने पुनः विमलशाह को मान पूर्वक बुलाया और राजा धंधुक के साथ युद्ध करने के लिये कहा।

वीर विमलशाह ने देश भक्ति से प्रेरित होकर यह कार्य अपने हाथ में लिया और धंधुक पर चढ़ाई कर दी। धंधुक अपने प्राण बचाकर भागा। विमलशाह ने भीमदेव की जय घोषणा की और स्वामी भक्ति का

प्रदर्शन करते हुवे सोलंकी राज्य का झंडा फहरा दिया। उसके पश्चात् विमलशाह चन्द्रावति में ही रहने लगे, और नगर की बहुत सुन्दर रचना की।

इसके पश्चात् इसी रणवीर ने आबू पर्वत पर अठारह करोड़ तीस लाख रुपया खर्च करके जैन मन्दिर बनवाये जो आज विमलशाह की विमल कीर्ति का स्मरण दिला रहे हैं और जैन समाज का गौरव और यश संसार भर में उज्ज्वल कर रहे हैं।

इस प्रकार विमलशाह वीर होने के साथ ही एक महान् धर्मात्मा भी थे वे सिंह जैसे पराक्रमी और बलवान थे, परन्तु उनमें सिंह जैसी क्रूरता नहीं थी।

प्यारे बालको! तुम भी वीर विमलशाह की भांति अपने पूर्ण बल और पौरुष को बढ़ाओ और अद्भुत लौकिक तथा पारमार्थिक कामों को करने के लिये अपने को वीर साहसी बनाओ।

प्रश्नावली

१ वीर विमलशाह कौन थे?

२ उनकी वीरता और पराक्रम के कारनामे सुनाओ।

३ उन्होंने कौनसा ऐसा कार्य किया जो आज भी जगत को उनकी कीर्ति का स्मरण दिला रहा है?

४ उनके जीवन से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है?

इति